स्वामी रामतीर्थ

The Onkar Press Allahabad.

ओ३म्

श्री स्वामी रामतीर्थ

(संक्षिप्त चरित्र और विचारों का निर्दर्शन)

"'Unselfish work lays God under debt, and God is bound to pay back with interest."—*Swami Ram Tirtha.*

लेखक

नन्दकुमार देव शर्मा

[भूतपूर्व प्रधान सम्पादक "विहार बन्धु" "आर्य मित्र" संयुक्त सम्पादक सद्धर्म प्रचारक, सहायक मन्त्री-हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि]

सम्पादक

स्वर्गीय पण्डित ओंकारनाथ वाजपेयी

प्रकाशक

काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी एस० आर० बी०

अध्यक्ष

ओंकार प्रेस एवं ओंकार बुकडिपो प्रयाग ।

पण्डित विश्वम्भरनाथ वाजपेयी के प्रबन्ध से ओंकार प्रेस प्रयाग में छपा।

तृतीयवार ३०००]　　सम्वत् १९७९　　[मूल्य ।=)

WANTED

Reformers,

Not of others

but of themselves,

Who have won

Not University distinctions,

But victory over the local self.

Age: the youth of divine joy.

Salary: Godhead.

Apply sharp

with no begging solicitations

but commanding decision to

the director of the Universe

Your own Self.

OM! OM! OM! OM!

प्रकाशक की भूमिका
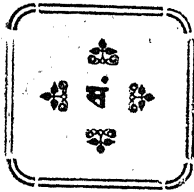
संसार-सागर के अनन्त उतुङ्ग तरङ्गो के बीच जीवन-नौका खेते २ थक गया हूं ! शक्ति क्षीण, बल हीन, दीन हूं !! आलस्य एवं भोग-निद्रा ने आ घेरा है !! हाय, तृष्णा-भंवर के भी विकट जाल में फंस गया हूं !!! अब क्या करू ?

लीजिये, आपको अन्तिम नमस्कार शेष है ! कारण, कूच का विगुल बज गया है ! जीवन-दीप का तैल समाप्त हो गया है !! मन–कुसुम कुम्हला गया है !! शारीरोद्यान में अब झांड झंखाड़ ही शेष रह गये हैं !!! बस जिह्वा भी सूख गई ! लो, नमस्ते ! नमस्ते !! नमस्ते !!!

ऐसे जीवन-निराश वाचक वृन्द ! आओ ! तुम्हें यह संन्यासी ही धैर्य दे सकता है । इसके उपदेशामृत का पान करो, अमर हो जाओ गे ! जगत के सच्चे शासक एवं स्वामी बन जाओ गे !! सूर्य चन्द्र और ये सितारे तुम्हारे इशारों पर नाचें गे !!! प्रकृति अपनी मधुर वीणा की झंकार से तुम्हें रिझाये गी ! सब स्थानों में तुम्हारी ही सत्ता झिलमिलाये गी !! तुम्हीं उपास्य एवं उपासक के खेल खेलो गे !!! और बाद में निर्विकार अनन्त ब्रह्म बन कर तुम ही तुम रह जाओ गे ।

निस्सन्देह हर्ष है कि जनता ने स्वामी राम के सूक्ति-सुधा

का पान बड़े चाव से किया है, क्योंकि ६००० प्रतियां थोड़े ही समय में हाथों हाथ निकल गई। अब अधिक मांग के कारण ही २००० प्रति तृतीय वार फिर प्रकाशित की जाती है आशा है जनता में इस पुस्तक के पढ़ने का उत्साह दिन दूना बढ़ेगा।

अन्त में हम अपने परम मित्र पं० गोपी नाथ भार्गव के आभारी है जिन्होंने इसके पुनः प्रकाशन में बड़ी सहायता दी है।

प्रकाशक

प्रस्तावना

"साधयति परं कार्य्यमिति साधु"

हमारे देश में साधु संन्यासियों की कमी नहीं है। भगवा वस्त्र पहने हुये, मूड़ मुड़ाये हुए कनफटे "जोगी" नित्य प्रति दिखलाई पड़ते हैं, दाता भला करे कहने वाले और भीख के रोट डकारने वाले साधुओं का तो हमारे देश में अजीर्ण हो गया है और इनके बोझ से हिन्दू समाज दब रहा है। किसी किसी का कहना है कि इस प्रकार के साधु हमारे देश में ५२ लाख हैं। इन बावन लाख साधुओं के पालन में इस भारत माता के विशेषतः हिन्दू समाज के कई करोड़ रुपये खर्च हो जाते हैं। भारत वर्ष का ऐसा कोई प्रान्त नहीं है जहां भीख के रोट डकारने वाले साधु संन्यासी और महन्त न हों। बल्कि बहुत से ऐसे साधु संन्यासी देखने में आये हैं जो नाम मात्र को साधु सन्यासी हैं भीख मांगते हैं पर वे बड़े राजसी ठाट से रहते हैं खूब मुक़द्दमें बाज़ी और रंडी बाजी में धन फूंकते हैं। ऊपर से योगी और भीतर से पक्के भोगी हैं। साधु का अर्थ जो दूसरों का उपकार करना है उसकी व्यवहारिक रीति से हत्या कर रहे हैं। इस समय हमारे देश में समर्थ स्वामी रामदास, श्रीब्रह्मेन्द्र, एकनाथ, सूरदास, कबीर, गोस्वामी तुलसीदास, गुरु नानक, रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द आदि के से साधु संन्यासियों की आवश्यकता है, जिनके हृदय में दीन दुखियों के प्रति दया हो

और अपने देश और समाज के प्रति सहानुभूति हो । जो अपनी प्रतिभा और बुद्धि के बल से देश और समाज में जागृति फैलाते हैं । धर्म, देश और समाज की रक्षा करने में समर्थ हों । दुर्भाग्य वश हमारे देश में ऐसे सच्चे साधु संन्यासियों की बहुत कमी है । स्वामी रामतीर्थ उन उच्च कोटि के साधुओं में से थे जिनके जीवन का ब्रत धर्म और देश की सेवा करना ही था । जिन्होंने थोड़े समय में अपनी प्रतिभा के बल से इस देश में जागृति उत्पन्न कर दी थी । आइये ! पाठक !! आइये !!! "अलिफ़ लैला" "चम्पा चमेली" आदि के बनावटी किस्सों का पढ़ना छोड़कर आज हम सच्चे और कर्मयोगी साधु स्वामी रामतीर्थ की जीवनी का पाठ करें, जिससे हमारे हृदय से अज्ञान दूर हो, ज्ञान की ज्योति प्राप्त हो, उस प्रभु की मङ्गलमय सृष्टि में से अमङ्गलमय बातों के दूर करने में समर्थ हों, अत्याचारियों के अत्याचार को छुड़ाने के लिये आत्मिक बल प्राप्त हो । इस मङ्गलमय सृष्टि में हम अपने स्वत्व और अधिकारों को पहिचानें, जो लोग हमारे स्वत्व और अधिकारों को कुचल रहे हैं, उन्हें बतला दें कि हम भी मनुष्य हैं हमारे मनुष्योचित अधिकारों को नष्ट करना कोई सरल बात नहीं है । आओ ! प्यारे पाठको !! आओ !!! आज हम यही विचार करें कि स्वामी रामतीर्थ की जीवनी और उपदेश इस विषय में हमको क्या शिक्षा देते हैं ?

स्वामी रामतीर्थ

जन्म-भूमि, वंशादि का परिचय और

बाल्यावस्था

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है और हमारा तो अटल विश्वास है कि जननी और जन्म-भूमि का मनुष्य के चरित्र से विशेष सम्बन्ध होता है। चाहे जिस महापुरुष की जीवनी पर विचार कीजिये हमारे इस सिद्धान्त की सचाई का नमूना मिलेगा। जिस प्रकार माता की शिक्षा दीक्षा और विचारों का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर पड़ता है, वैसे ही जन्मभूमि की भूत और वर्त्तमान परिस्थिति भी मनुष्यों के विचारों पर रंग जमाती है। कौन नहीं जानता कि यदि शिवाजी महाराष्ट्र प्रान्त में ऐसे समय में न हुए होते, जब मुसलमानों का ज़ोर था तो शिवाजी देशोद्धार के महाव्रत को अवलम्ब करते या नहीं, इसमें सन्देह है। यदि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बंगाल में ऐसे समय में न हुए होते, जब बालविधवाओं की संख्या बढ़ रही थी तो वे विधवा विवाह का पक्ष अवलम्बन करते या नहीं इसमें सन्देह है। यदि राजा राममोहनराय बंगाल में जब ईसाइयों का प्रबल बेग बढ़ रहा था, उत्पन्न न हुए होते तो क्या ब्रह्मसमाज की नींव पड़ती? यदि स्वामी दयानन्द उस समय भारत की रंग भूमि पर न आये होते जब उत्तर भारत

में ईसाई, मुसलमानों के कारण हिन्दू समाज क्षीण हो रहा था तो क्या आज आर्य समाज का नाम सुनाई पड़ता ? कहने का सारांश यह है कि महापुरुषों के विचार और चरित्र देश की परिस्थिति के अनुसार बनते हैं पञ्चनद अर्थात् पंजाब की भूमि में भी एक विशेषता है, उसमें सदैव से धर्मवीर रणवीर कर्मवीर और उद्योगवीर होते आये हैं गुरु नानक, गुरु गोविन्द सिंह, बालक हकीकतराय, रणजीत सिंह, हरी सिंह नालवा प्रभृति अनेक वीरों के उत्पन्न करने का सौभाग्य समय समय पर पञ्जाब प्रान्त को ही हुआ है। समय समय पर सिक्ख गुरुओं ने पञ्जाब के राष्ट्रीय यज्ञ में धन बल जन को जो आहुति दी थी, त्याग का जो उच्च आदर्श उपस्थित कर दिया था उसका अभी तक प्रभाव बना हुआ है। सिक्ख गुरुओं के कार्य और उपदेश आज भी पञ्जाबियों को लोकोपयोगी कार्य करने के लिये लोगों को उत्साहित करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त पञ्जाब की स्वाधीनता भारत के समस्त प्रान्तों के पीछे नष्ट हुई है इससे भी पञ्जाबियों के हृदय में प्रत्येक कार्य के लिये उत्साह होता है। ऐसे ही उत्साही प्रान्त को हमारे चरित्र नायक स्वामी रामतीर्थ को उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वहां के गुजरानवाला ज़िले के मराली नीमक गांव में गोस्वामी हीरानन्द जी नामक ब्राह्मण रहते थे, उनकी धर्मपत्नी परम सुशीला थी, इन्हीं गोस्वामी हीरानन्दजी के यहां ८ अक्टूबर सन् १८७३ ईस्वी में एक बालक का जन्म हुआ था उस समय उस बालक का नाम तीर्थराम रखा गया था। उस समय कौन जानता था कि एक दिन यह बालक तीर्थराम, रामतीर्थ के नाम से अपनी बुद्धि और प्रतिभा से

सारे संसार को चकित और स्तम्भित कर देगा।

बालक तीर्थराम को अपनी माता का दुग्धपान करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। बेचारे तीर्थराम को बाल्यावस्था में ही मातृ वियोग की असहनीय वेदना सहन करनी पड़ी थी। जब तीर्थराम बहुत छोटे थे तभी उनकी स्नेहमयी माता का देहान्त हो गया था। इसलिये बालक तीर्थराम को अपने माता के लालन पालन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। तीर्थराम का लालन पालन उनके बड़े भाई गुसांई गुरुदास और उनके पिता की एक बहिन ने किया था।

लोक में एक कहावत प्रचलित है कि चाहे माता, सन्तान का कुछ भी न करे और खाली हाथ भी अपनी सन्तान पर फेरती रहे तो भी सन्तान प्रसन्न रहती है। यह लोकोक्ति और किसी के चरित्र में फबती हो या नहीं परन्तु हमारे चरित्र नायक के सम्बन्ध में अच्छी तरह से चरितार्थ होती है। माता के लाड़ प्यार से वञ्चित रहने और माता का दुग्ध पान न करने से तीर्थराम बालपन में बड़े दुर्बल रहते थे बिलकुल शारीरिक शक्ति न थी। जिन्होंने बाल्यावस्था में उन को देखा था वे स्वामी रामतीर्थ के इस समय के कार्य को देखकर ताज्जुब करते हैं। वास्तव में उस समय यह किसी को स्वप्न में भी ज्ञात नहीं था कि एक दिन में वे ५० मील तक पहाड़ों पर दौड़ लगावेंगे, अमेरिका के जङ्गलों की दौड़ में सिपाहियों से भी आगे निकल जावेंगे, अस्तु

कालक्रम की घटनाओं को छोड़कर यहां पर हमको इतना ही कहना है कि बालक तीर्थराम अपनी शारीरिक दशा ठीक न होने पर भी पढ़ने लिखने में खूब मन लगाते थे, अपने गाँव

मरालीवाला में ही उन्होंने प्राथमिक पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की थी, पीछे वे गुजरानवाला में आकर विद्याभ्यास करने लगे, छात्रावस्था में तीर्थराम जो अपने विशेष परिश्रम और विलक्षण प्रतिभा से अध्यापकों को प्रसन्न रखते थे। उनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। प्रत्येक विषय का बहुत सोच समझ कर उत्तर देते थे जिससे उनके अध्यापक वर्ग को यह विश्वास हो गया था कि एक दिन यह अवश्य जिस विषय को हाथ में लेंगे, उसकी अपूर्व उन्नति किये बिना नहीं रहेंगे। लग भग १५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने पञ्जाब यूनिवर्सिटी से एन्ट्रेंस की परीक्षा उतीर्ण की। यदि आज कल की भांति एन्ट्रेंस की परीक्षा में सोलह वर्ष की पख होती तो बेचारे तीर्थराम की भी आयु का एक वर्ष व्यर्थ हो जाता। जो कुछ हो उस समय एन्ट्रेंस में सोलह वर्ष की पख न थी इसीलिये बेचारे तीर्थराम ने छोटी उम्र में ही एन्ट्रेंस परीक्षा पास करली और वे पञ्जाब विश्वविद्यालय में एन्ट्रेंस में प्रथम रहे थे।

भगत जी का सत्संग
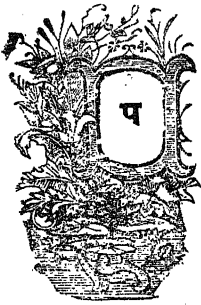
पढ़ना और गुनना दोनों जुदी २ बाते हैं। चाहें जितना क्यों न पढ़ लिया जाय पर जब तक विद्या का सदुपयोग करना न सीखा जाय तब तक पढ़ना न पढ़ना बराबर है। आज भी हमारे देश में संस्कृत के ऐसे विद्वान दिखलायी पड़ते हैं जिन्होंने अपनी आयु का अधिकांश भाग पठन पाठन में ही व्यतीत किया है। उनके विद्याभ्यास करते करते बाल सफ़ेद होगये हैं परन्तु इतने विद्याध्यन करने पर भी उनके जीवन में कसर रह जाती है कि वे पढ़े तो होते हैं पर गुने नहीं होते हैं। इस लिये कहना पड़ता है कि पढ़ना और गुनना दोनों बातें जुदी २ हैं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि विद्या सम्बन्धी योग्यता की बड़ी बड़ी डिगरियां देने पर भी किसी विश्ववि-द्यालय ने किसी की बुद्धि का ठेका नहीं लिया है। जो लोग दूसरों की योग्यता का अनुमान केवल नाम के पीछे बड़ी बड़ी डिगरियों को देखकर ही किया करते हैं, उनकी भारी भूल है। हमारे देश में वर्त्तमान शिक्षा की दौड़ धूप के समय में भी ऐसे कितने ही महापुरुष हो गये हैं, जिन्होंने विश्वविद्यालय के किसी दरवाज़े पर बिना टक्कर मारे भी विश्वविद्यालय

की लम्बी लम्बी डिगरी प्राप्त किये हुये लोगों से बढ़ कर अपनी योग्यता का परिचय दिया है। रामकृष्ण परमहंस किस विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त थे, जो आज सैकड़ों व्यक्ति उनके सदुपदेशों से शिक्षा प्राप्त करते हैं। स्वामी दयानन्द ने किस विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त की थी जो आज सैकड़ों ग्रेज्यूएट उनके अनुयायी हैं। कहने का सारांश यह है कि केवल किसी व्यक्ति के नाम के पीछे विश्वविद्यालय की डिगरी के पुछल्ले से योग्यता का अनुमान करना व्यर्थ है।

जिस समय तीर्थराम जी अपने गांव मरालीवाला से गुजरानवाला में आकर पढ़ने लगे थे उस समय वहां पर धन्ना भगत नामक एक सज्जन रहते थे। धन्ना भगत किसी आधुनिक विश्वविद्यालय के डिगरी प्राप्त सज्जन नहीं थे। परन्तु उनके हृदय में पवित्र विचार हिलोरे रहे मार थे। यद्यपि उनके पवित्र उपदेश आजकल के व्याख्यानों की भांति अखवारों में नहीं छपते थे। उनके उपदेशों और उनके नाम की बहुत दूर तक धूम नहीं मची हुई थी तथापि गुजरानवाला के आस पास गांवों से सर्वसाधारण बड़े चाव से श्रद्धापूर्वक भगत जी के सदुपदेशों का अमृत पान करने आते थे दैवयोग से तीर्थराम जी की भी भगत जी से भेंट हुई और वे भगत जी के पास ही गुजरानवाला में रहने लगे थे। पढ़ने के पश्चात् तीर्थराम जी को जो समय मिलता था वे भगत जी के सत्सङ्ग में व्यतीत करने लगे। भगत जी के सदुपदेशों का प्रभाव उनके हृदय पर अच्छा हुआ। भगत जी वेदान्ती थे उन्होंने विद्यार्थी तीर्थराम को भी वेदान्त का ही शिक्षा दी थी। इससे पूर्व पञ्जाब में साधु निश्चल-

दासजी के कारण वेदान्त की खूब चर्चा हो चली थी। साधु निश्चलदास जी ने वेदान्त सागर नामक अपूर्व ग्रन्थ हिन्दी में लिखा है, स्वर्गीय मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी जैसे विद्वान वहां वेदान्त के अनुयायी हुए हैं। इसलिये धन्ना भगत जी का वेदान्ती होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। यदि छात्रावस्था में कुशाग्रबुद्धि तीर्थराम जी की धन्नाभगत जी से भेंट न होती तो सम्भव है वे आज जापान और अमेरिका में वेदान्त दर्शन की गूढ़ शिक्षाओं को समझाने में समर्थ होते या नहीं ?

वेदान्तदर्शन के गूढ़ तत्वों के समझने के अतिरिक्त तीर्थ रामजी को धन्ना भगत के सत्सङ्ग से एक और भी अपूर्व लाभ हुआ। जिस समय वे गुजरानवाला से एन्ट्रैंस पास कर चुके थे उस समय तीर्थराम के पिता की इच्छा हुई कि उनको उच्च शिक्षा न दिला कर रोज़गार में लगावें परन्तु धन्ना भगत जी ने तीर्थराम के पिता से तीर्थराम जी को अङ्गरेज़ी की उच्च शिक्षा देने का अनुरोध किया। अन्त में पिता ने भी धन्ना भगत जी के अनुरोध से अपने पुत्र को अङ्गरेज़ी की उच्च शिक्षा देना उचित समझा और उनको गुजरानवाला से लाहौर में पढ़ने को भेज दिया।
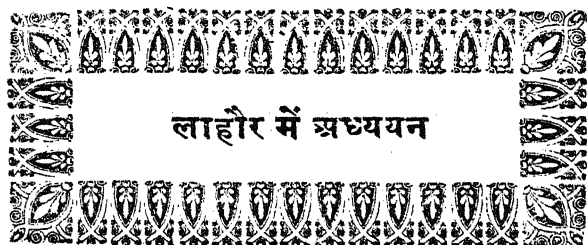
लाहौर में अध्ययन

जिस समय तीर्थराम जी एन्ट्रेंस पास करके पञ्जाब की राजधानी लाहौर में पहुंचे थे उस समय लाहौर की आज कल की सी परिस्थिति नहीं थी। आज कल लाहौर में जो पांच छः कालेज दिखलाई पड़ते हैं वे उस समय नहीं थे। उस समय दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेज स्थापित तो हो चुका था तथापि आज कल की भांति विख्यात नहीं हुआ था। तीर्थराम जी फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में पढ़ने लगे। कालेज में पढ़ते समय जैसे अनेक विद्यार्थी नित्य नये फ़ैशन के शिकार बन जाते हैं यह बात तीर्थराम जी में नहीं थी। वे बहुत ही सादे लिबास में रहते थे। उनकी बोल चाल बहुत सीधी सादी थी कालेज की पढ़ाई और आध्यात्मिक चिन्तन के सिवाय उनको और कोई बात सूझती ही नहीं थी। फोरमैन क्रिश्चियन कालेज से उन्होंने बी. ए, की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इस परीक्षा में वे पन्जाब विश्वविद्यालय में प्रथम रहे थे जिससे उन्हें ६०) साठ रुपया मासिक छात्रवृत्ति मिलती थी इसमें से

वे अपना बहुत कम खर्च करते थे बाक़ी रुपया अपने घर भेज देते थे अथवा अपने गुरुजी की आवश्यकताओं के दूर करने में लगा देते थे। तीर्थराम जी का गणित में विशेष अनुराग था इसलिये उन्होंने क्रिश्चियन कालेज को परित्याग करके वहां के गवर्नमेंट कालेज में पढ़ना आरम्भ किया और दो वर्ष में एम० ए० भी पास कर लिया। एम० ए० पास करते समय तीर्थराम जी की अवस्था २१ वर्ष की थी जिस समय वे कालेज में पढ़ते थे उस समय उनके पिता तो उनके पास बहुत कम आते थे परन्तु उनके गुरु धन्ना भगत जी बहुत आया करते थे और भगत जी उनको यथोचित उपदेश भी दिया करते थे।

छात्रावस्था में उन्होंने अपने गुरु धन्ना भगत जी को जो चिट्ठियां समय समय पर भेजी हैं उनमें से एक चिट्ठी का यहां कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को ज्ञात होगा कि वे छात्रावस्था में अपना किस भांति समय व्यतीत करते थे और अपने गुरुजी के कैसे भारी आज्ञाकारी थे। निम्न लिखित चिट्ठी उन्होंने ६ फ़रवरी सन् १८६४ को अपने गुरु जी को लिखी थी जिसका सारांश यह है:-"आपका कृपापत्र इस समय मिला, और निहायत खुशी हुई। मैं आजकल सुबह पांच बजे सोकर उठता हूं। और सात बजे तक पढता रहता हूं। फिर शौच आदि से निवृत्त होकर स्नान करता हूं और व्यायाम करता हूं उसके पीछे पंडित जी की ओर जाता हूं। मार्ग में पढ़ता रहता हूं एक घंटे के पीछे भोजन करके उनके साथ गाड़ी में बैठ कालेज जाता हूं कालेज से आते समय मार्ग में दूध पीता हूं। डेरे पर कुछ मिनट ठहर कर नदी की ओर जाता

हूं। वहां जाकर नदी के किनारे पर कोई आध घंटे के लगभग टहलता रहता हूं। वहां से लौटते समय बाग़ में घूमता हूं। वहां से डेरे पर आकर कमरे की छत पर चहल क़दमी करता रहता हूं। यह आप स्मरण रक्खें कि मैं चलते फिरते पढ़ता बराबर रहता हूं अंधेरा होते ही कसरत करता हूं और लेम्प जलाकर सात बजे तक पढ़ता हूं। फिर रोटी खाने जाता हूं और प्रेम की तरफ़ भी जाता हूं। वहां से आकर कोई १० और बारह मिनिट अपने मकान में कसरत करता हूं फिर कोई साढ़े दस बजे तक पढ़ता हूं। इससे मुझे यह अनुभव हुआ है कि यदि हमारी पाचनशक्ति अच्छी दशा में रहे तो हमको बहुत आनन्द और सुख प्राप्त हो, एकाग्रचित्त भी रह सकते हैं, परमात्मा को भी नहीं भूलते और अन्तःकरण की शुद्धता एवं पवित्रता भी प्राप्त होती है। बुद्धि और धारणाशक्ति भी तीव्र होती है। पहले तो मैं खाता ही बहुत कम । दूसरे जो कुछ खाता हूं, उसको खूब पचा लेता हूं"।

तीर्थराम जी के उपयुक्त पत्र से ज्ञात होता है कि उन्हें छात्रावस्था में ही अपनी शारीरिक दुर्बलता ज्ञात हो गई थी, और उसके दूर करने की चेष्टा उस समय से ही आरम्भ कर दी थी। यही कारण था कि धीरे धीरे उनकी शारीरिक दुर्बलता दूर होगई और इतनी शक्ति प्राप्त हो गई थी कि जहां उन्होंने अपने आध्यात्मिक ज्ञान से लोगों को चकित और स्तम्भित कर दिया था। वहां उनकी शारीरिक शक्ति को देख कर भी लोग ताज्जुब में आगये थे।

कालेज में अध्यापक
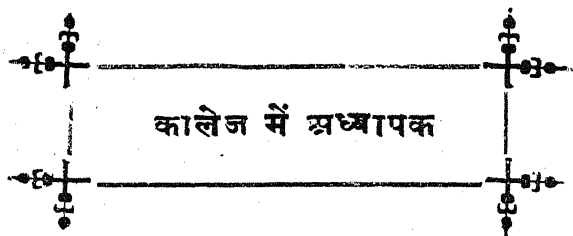
छात्रावस्था में ही तीर्थराम जी ने विद्यार्थियों को गणित पढ़ाने की ठान ली थी। क्योंकि उनको गणित से विशेष अनुराग था। कहते हैं कि लाहौर गवर्नमेन्ट कालेज के तत्कालीन प्रिन्सिपल मिस्टर डब्ल्यू बेल ने तीर्थराम जी की चमत्कारिक बुद्धि और योग्यता को देखकर चाहा था कि वे प्राविन्शियल सिविल सर्विस की परीक्षा दें, परन्तु तीर्थराम जी ने गणित में विशेष अनुराग होने के कारण, यह स्वीकार न किया, उन्होंने अपनी यही लालसा प्रकट की मैंने जिस गणित के विषय को अत्यन्त परिश्रम और मननपूर्वक अध्ययन किया है वह गणित विषय छात्रों को पढ़ाऊंगा"। एम० ए० पास होने के पश्चात् ही वे स्यालकोट मिशन कालेज में प्रोफसर हो गये थे लाहौर के गवर्नमेन्ट कालेज में भी कुछ दिन रीडर रहे थे। इसके बाद लाहौर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में भी दो वर्ष तक गणित के अध्यापक रहे थे। गणित के विषय से उन्हें उतना अनुराग था कि उन्होंने उन दिनों सरकारी छात्र वृत्ति प्राप्त करके सीनियर रेङ्गलर की परीक्षा, देने को केम्ब्रिज

में अध्ययन करने के लिये जाने का विचार किया था। परन्तु परमात्मा जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। परमेश्वर को यह स्वीकार नहीं था कि वे सीनियर रेङ्गलर होकर ही रह जायं। उसे तीर्थराम जी को सीनियर रेङ्गलर बनाने की अपेक्षा और ही कुछ बनाना था। वास्तव में किसी किसी समय कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जो उस समय तो अप्रिय होती हैं परन्तु पीछे उनका परिणाम अच्छा प्रतीत होता है। यही दशा तीर्थराम जी की हुई उस समय उनको केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय में अध्ययन करने के लिये छात्र वृत्ति नहीं मिली। एक मुसलमान विद्यार्थी को सरकारी छात्रवृत्ति मिली। इस मुसलमान विद्यार्थी में तीर्थराम जी की सी योग्यता न थी, परन्तु होनी तो प्रबल होती है बेचारे राम-तीर्थ जी की सीनियर रेङ्गलर होने की इच्छा मन की मन ही में रह गई। उस समय वास्तव में यह घटना बहुत बुरी हुई थी परन्तु अंगरेज़ी की इस कहावत के अनुसार कि "कभी कभी बुराई में से भी भलाई निकल आती है" यह घटना तीर्थराम जी और इस देश के लिये अच्छी ही हुई। उस समय तीर्थ रामजी को सरकारी छात्रवृत्ति न मिलना ही अच्छा हुआ। यदि उस समय सीनियर रेङ्गलर हो जाते तो न वे स्वामी राम तीर्थ होते न यह देश उनके अगणित उपदेशों से लाभ उठाता, इसलिये परमेश्वर को यह मञ्जूर न हुआ। सच पूछिये तो वह बड़ी शुभ घड़ी थी जिस समय तीर्थरामजी को सरकारी छात्रवृत्ति नहीं मिल सकी। तनिक सी असफलता प्राप्त होने पर ही, जिनके हृदय में निराशा रूपी समुद्र की लहरें उठने लग जाती हैं, उनको इस घटना से अवश्य शिक्षा ग्रहण करनी

चाहिये और परमात्मा के न्याय पर विश्वास करना चाहिये कि वह जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है। उसके न्याय के अन्तर्गत न मालूम क्या छुपा हुआ है? ऐसी २ साधारण असफलताओं और आपदाओं से न घबड़ा कर हमें परमेश्वर के ऊपर ही विश्वास करना चाहिये। उसके न्याय के सामने सिर झुकाना चाहिये। उसकी माया पहचानना बड़ा कठिन है जो बात हमको उसकी देखने में बुरी मालूम होती है, पीछे वही हमको अच्छी प्रतीत होने लगती है।

वैराग्य एवं एकान्त सेवन

छात्रावस्था से ही तीर्थराम जी को संसार से कुछ विरक्ति हो रही थी। उन दिनों वे जो पत्र अपने गुरु धन्ना भगत जी को भेजा करते थे, उनसे ही पता लगता है कि उस समय से ही उनको वैराग्य उत्पन्न हो गया था। वे वेदान्त के अनुयायी हो चुके थे। उनमें से एक पत्र का संक्षिप्त सारांश यहां प्रकाशित करते हैं।

तीर्थरामजी इस पत्रमें अपने गुरु जी को "महाराजा जी" शब्द से सम्बोधन करते हुए लिखते हैं:—"परमेश्वर बड़ा ही चङ्गा है। मुझे बड़ा ही प्यारा लगता है। कृपया आप उस के साथ प्रेम रक्खा करें। वह कभी कभी आपके साथ सख्ती करता है, यह उसके विनोद हैं। वह आपके साथ दिल्लगी करना चाहता है हमारा कर्तव्य है कि हम हंसने वालों से नाराज़ न होकर किसी और पत्र में आप को उसकी और भी बहुत सी बात लिखूंगा। यह पत्र मैं मेज़ पर रख कर लिख रहा हूं, यहां प्रातःकाल कुछ खांड़ गिर गई थी, उस खांड़ के पास चार पांच चीटियां (पिपीलिका) इकट्ठी हो रही

हैं और वह सब मेरी कलम की और अक्षरों की ओर ताक रही हैं। और आपस में बड़ी बातें कर रही हैं। इसके आगे तीर्थराम जी ने बड़ी सुन्दर अलङ्कारिक भाषा में चीटियों की बातें लिखी हैं जिनमें से कोई चींटी तो कहती है कि कलम की तारीफ़ करनी चाहिये क्योंकि इस कलम के कारण ही सुन्दर सुन्दर अक्षर बन रहे हैं इस पर दूसरी चींटी कहती है कि यह प्रशंसा कलम की नही अंगुलियों की है जिनके इशारे से कलम चल रही है। इस पर तीसरी चींटी कहती है कि यह अंगुलियों की प्रशंसा नहीं है बल्कि लम्बे लम्बे बाजुओं (हाथों) की प्रशंसा है, जिनके अधार पर यह सब निर्भर है। इस पर सब से बड़ी चींटी कहती है कि यह बाजुओं की करामात नहीं हैं बल्कि इस लम्बे चौड़े धड़ का दारमदार है" जिसके सहारे यह सब काम हो रहा है इस प्रकार चींटियों की अलङ्कारिक भाषा लिखकर गुसाईं तीर्थ-राम जी अपने गुरू को लिखते हैं कि मनुष्य के शरीर और प्राणों से परे भी एक वस्तु है अर्थात् "परमात्मा" उस वस्तु अर्थात् परमात्मा के सहारे सब भूत चेष्टा करते हैं। संसार में जो कुछ होता है, वह उसकी इच्छा से ही होता है। बिना तारवाले के पुतलियां नहीं नाच सकतीं। बिना बांसुरी बजाने वाले के बांसुरी नहीं बज सकती। इसी प्रकार से संसार में मनुष्य उसकी बिना आज्ञा के कोई काम नहीं कर सकता। जैसे तल-वार का काम मारना है, मगर वह तलवार बिना चलाने वाले के नहीं चल सकती। इस तरह से कुछ लोगों का स्वभाव चाहे जितना ख़राब क्यों न हो, जब तक उन्हें परमेश्वर न उकसाये वे हमें कष्ट नहीं पहुंचा सकते जैसे बादशाह के

साथ सुलह करने से सारी सल्तनत (राजधानी) के कर्मचारी हमारे मित्र बन जाते हैं, इसी तरह से परमात्मा को राजी रखने से समस्त संसार हमारा अपना हो जाता हैं।

चाहे हमारे पाठकों में से बहुत से लोग उपर्युक्त पत्र के लेखक को आधा पागल समझें। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हमारे चरित्र नायक स्वामी रामतीर्थ तीर्थराम रहते समय ही संसार से विरक्त हो गये थे। उन्हें प्रतिक्षण राजाओं के राजा महाराजाओं के महाराज, सम्राटों के सम्राट, परम-पिता परमेश्वर को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और कुछ चिन्ता ही नहीं थी उनके एक सहपाठी महाशय ने उनकी मृत्यु के पश्चात् उर्दू के एक मासिक पत्र में एक लेख लिखा था। जिसमें वे कहते हैं—"एक दिन मैंने गुसाईं जी से पूछा कि आपकी यथार्थ इच्छा क्या है? कालेज के विद्यार्थियों को पढ़ाने की या और कुछ। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि यह सिलसिला थोड़े दिनों का है स्त्री और बच्चों के लिये कुछ इकट्ठा कर देने के पीछे रात्रि दिन देशाटन और उपदेश करना ही मेरी हार्दिक लालसा है। जहां कहीं जाऊंगा, विद्यार्थियों को पढ़ा कर दूध के लिये थोड़ा सा ले लिया करूंगा। और दूसरी वस्तु से कुछ सरोकार नहीं। उपदेश द्वारा पारमार्थिक अविद्या दूर करना मेरा मुख्य कर्तव्य है।

इन सब बातों से ज्ञात होता है कि हमारे चरित्र नायक को आरम्भ से ही संसार की बनावटी बातों से घृणा थी जो लोग अन्धकार में अविद्या में अज्ञान में फंसे हुये थे उनको अपने विचारों के अनुसार सत्पथ की ओर आकृष्ट करना था। परन्तु उन्होंने सर्व साधारण में अपना यह विचार अक्टूबर

सन् १८९७ को प्रकट किया था, उस वर्ष दिवाली के शुभ दिन को, जब बहुत से भारतवासी अपने बड़ों का उपदेश भूल कर जुआ खेलने में मग्न हो रहे थे भगवान् रामचन्द्र जी की विजय के उपलक्ष्य में घर घर दिओं (प्रदीपों) की जगमगाहट से आंखें चकाचौंध हो रहीं थी। किटसन लाइट आदि विदेशी प्रदीपों से अमीरों के घर जगमगा रहे थे तब तो हमारे चरित्र नायक ने संसार के सब बनावटी सुखों पर लात मार कर चकाचौंध करने वाली रोशनी की ओर न दौड़ कर सच्चे ज्ञान की ज्योति अपने हृदय में धारण की उस समय तीर्थराम जी की अवस्था २४ वर्ष की थी उस समय उन्होंने अपने पिता को इस सम्बन्ध में जो पत्र लिखा था उसमें यह शब्द थेः—"आपके लड़के तीर्थराम का शरीर तो अब बिक गया, बिक गया ! राम के आगे ! उसका शरीर अपना नहीं रहा। आज दिवाली को अपना शरीर हार दिया और महाराज (परमेश्वर) को जीत लिया। आपको बधाई है। अब जिस चीज़ की ज़रूरत हो मेरे मालिक से मांगो। फ़ौरन ख़ुद दे देगा......महाराज परमेश्वर ही हम गुसाइयों का धन है। अपने निज के सच्चे धन को त्यागकर संसार की झूठी कौड़ियों के पीछे पड़ना हमको उचित नहीं। और उन कौड़ियों के न मिलने पर अफ़सोस करना तो बहुत ही बुरा है। अपने असली माल और दौलत का मज़ा एक दफ़ा ले तो देखो। यह अन्तिम निश्चय उन्होंने सन् १८९७ को किया था। परन्तु अन्तिम निश्चय हो जाने पर भी उनके कार्य में कुछ रुकावट नहीं आई यह अन्तिम निश्चय हो जाने पर भी वे दो वर्ष तक कालेज में अध्यापक का काम करते रहे। साथ ही वे अपनी

मानसिक उन्नति में भी दत्तचित्त रहे तीर्थराम जी की इस घटना से यह शिक्षा मिलती है कि सच्चे त्यागी और वैरागी संसार के कार्यों में लिप्त रहते हुए भी अपनी मानसिक उन्नति करने में तत्पर रहते हैं।

अन्त में सन् १८९९ में तीर्थराम जी ने संसार के सब झंझटों को त्याग करके संन्यास ग्रहण कर ही लिया। प्राचीन प्रथा के अनुसार उन्होंने अपना नाम तीर्थराम से रामतीर्थ रक्खा। अब तक हम अपने चरित्र नायक को उनके पूर्वाश्रम के नाम तीर्थराम स्मरण करते आए हैं अब उनके संन्यास आश्रम के नाम से ही उनका स्मरण करेंगे। अस्तु जिस समय स्वामी रामतीर्थ ने संन्यास ग्रहण किया था उस समय उनके कुटुम्बियों की, मित्रों की, पिता की, हृदयेश्वरी धर्म पत्नी की, नन्हें नन्हें बच्चों की कैसी दशा थी ? उनको कितनी मानसिक वेदना थी इसका पता हमारे सहृदय पाठकों को उस कविता से ज्ञात होगा जो उस समय उनके संन्यासोपलक्ष में काशी के प्रसिद्ध मासिक पत्र--"सुदर्शन" में जो अपने ढङ्ग का एकही था और इधर कई वर्ष से बन्द हो गया है, युवा संन्यासी शीर्षक प्रकाशित हुई थी। सुनिये पाठक महाशय ! वह कविता निम्न भांति है:—

गुण निधान मतिमान सुखी सब भांति एक लवपुरवासी,
युवा अवस्था बीच विप्र कुल केतु हुआ है संन्यासी।
विविध रीति से बस विरक्त को सुहृद बन्धु समुझाय थके,
गङ्गा जी के प्रवाह ज्यों पर उसे न वे सब रोक सके।
वृद्ध पिता माता की आशा बिन व्याही कन्या का भार,

शिक्षा हीन सुतों की ममता पतिव्रता नारी का प्यार ।
सन्मित्रों की प्रीति और कालेज वालों का निर्मल प्रेम,
त्याग एक अनुराग किया उसने बिराग में तज सब नेम ।
प्राणनाथ ? बालक सुत दुहिता "यों कहती प्यारी छोड़ा,
"हाय ! वत्स ! वृद्धा के धन !! यों रोती महतारी छोड़ी ।
चिर सहचरी "रयाजी" छोड़ी रम्य तटी रावी छोड़ी,
शिखा सूत्र के साथ हाय ! उन बोली पञ्जाबी छोड़ी ।
धन्य पञ्चनद भूमि जहां इस बड़भागी ने जन्म लिया,
धन्य जनक जननी जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया ।
धन्य सती जिनका पति मरने से पहिले हो जाय अमर,
धन्य धन्य सन्तान पिता जिनका है जगदीश्वर पर निर्भर ।
शोक ग्रसित हो गई लवपुरी उसकी हुई बिदाई जब,
द्रवीभूत कैसे न होय मन, संन्यासी हो भाई जब ।
खिन्न अश्रुमुख वृद्ध लगे कहने मङ्गल तव मारग हो,
जीवन मुक्ति सहाय ब्रह्म विद्या में सत्वर पारग हों ।
कुछ मित्रों ने हृदय थाम कर कहा कि प्यारे सुन लेना,
बात अन्त को आज हमारी जरा ध्यान इस पर देना ।
समदर्शी ऋषि मुनियों को भी भारत प्यारा लगता था,
इस कारण वह विद्यालय में जग से न्यारा लगता था ।
सर्व त्याग कर महा-भाग जो देशोन्नति में दे जीवन,
धन्यवाद देते हैं सुरगण भी उसका हो प्रमुदित मन ।
अपनी भाषा भेष भाव औ भोजन प्यारे भाई को,
नहीं समझता उत्तम समझो उससे भली लुगाइन को ।

एवमस्तु कर उच्चारण इन सब के उसने उत्तर में,
कहा 'अलविदा' और चला वह मनभावन उस औसर में।
लगे बरसने पुष्प और जय जय की तब ही उठी ध्वनी,
मानो भिक्षुक नहीं वहां से चला विश्व का कोई धनी।
ज्यों नगरी में होय स्वच्छता जब आता है कोई लाट,
त्यों वन पर्वत प्रकृति परिष्कृत हुए समझ मानो सम्राट।
निष्कण्टक पथ हुआ पवन से बारिद ने जल छिड़क दिया,
कड़क तड़ित ने दई सलामी आतपत्र वृक्षों ने किया।
विहङ्गकुल ने निज कलरव से उसका स्वागत गान किया,
श्वापद शान्त हुए मृगगण ने दक्षिण में आमान किया।
श्रेणी बद्ध फलित तरुओं ने उसको झुक कर किया प्रणाम,
पुष्पित लता और बिरवों ने कुसुम बिछाये राह तमाम।
खड़ा हिमालय निज उन्नति पर मस्तक तत्पद धारन को,
हुई तरङ्गित सुरसरि तब अभिषेक पुनीत करावन को।
शिक्षा देती मानो सब को जननी सदृश प्रकृत सारी,
विषय विरक्त ब्रह्म चिन्तन नर के सब अधिकारी।

उस समय स्वामी रामतीर्थ के मित्रों और सम्बन्धियों की कैसी दशा थी? इसका चित्र उपर्युक्त कविता में कवि ने अच्छी तरह से खींच दिया है। वास्तव में बिछुड़न समय बड़ा ही प्रभावोत्पादक होता है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य की जीवन यात्रा में बहुत सी रुकावटें आती हैं। परन्तु एक सहृदय लेखक के इस कथन से हम भी सहमत हैं कि मनुष्य के लिये जीवन संग्राम में इससे बढ़कर कोई करुणाजनक दृश्य

नहीं होता है जब वह अपने माता पिता से, भाई बन्धुओं से, स्त्री पुत्रों से, इष्टमित्रों से लंगोटिया साथियों से विदा होकर जीविका के निमित्त अपनी जन्मभूमि से सैकड़ों कोसों के फ़ासले पर भटकता फिरता है। विचारिये पाठक! जिस समय रामतीर्थ अपने घर वालों को परित्याग करके जीविका के निमित्त नहीं अध्यात्मिक ज्ञान की प्यास बुझाने के लिये घर से निकले थे, उस समय उनकी मानसिक स्थिति कैसी होगी। परन्तु नहीं कर्त्तव्य परायण व्यक्ति के सामने यह सब रुकावटें तुच्छ हैं। जैसे एक पीलवान मतवाले हाथी को भी अंकुश से वश में कर लेता है, वैसे ही कर्त्तव्य परायण व्यक्ति जो उसके उद्देश्य के मार्ग में रुकावटें हों उनको रौंद डालता है। स्वामी रामतीर्थ की देश सेवा के व्रत में ये तुच्छ रुकावटें कुछ बाधा उपस्थित नहीं कर सकीं। जिस समय उन्होंने संन्यास ग्रहण किया था उस समय उनकी अवस्था २६—२७ वर्ष की थी। उनके दो पुत्र और एक लड़की हो चुकी थी। परन्तु लड़के लड़कियों के स्नेह से भी उस महात्मा के महाव्रत में कुछ विघ्न, बाधा उपस्थित नहीं हुई। उन्होंने सब कुछ परित्याग करके देश सेवा का सङ्कल्प ठान लिया। बहुत से भोले पाठक सोचते होंगे कि स्वामी रामतीर्थ का बड़ा ही पत्थर का कलेजा था, जो उन्होंने अपने दुधमुहें बच्चे और अपनी प्राण प्यारी स्त्री को बिलखते हुए छोड़कर संन्यास ग्रहण किया। ऐसे भोले पाठकों से हमारा निवेदन है कि अपने कर्त्तव्य पालन के सामने इस देश के पुरुषों ने तो क्या, स्त्रियों तक ने समय समय पर त्याग का ज्वलन्त दृष्टान्त दिया है। इतिहास रसिक पाठकों से छिपा हुआ नहीं है कि मेवाड़ की पन्ना दासी ने अपने

स्वामी के पुत्र की रक्षा के लिये अपने आंखों के तारे, दुलारे इकलौते पुत्र को कटवा दिया था। इस कर्तव्य पालन के निमित्त ही महात्मा गौतम बुद्ध ने राज पाट परित्याग करके भिखारी का वेश धारण किया था। कहने का तात्पर्य यह है "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की सेवा के निमित्त सब कुछ सहन करना पड़ता है।

संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् स्वामी रामतीर्थ हिमालय पर्वत पर एकान्त सेवन करने के लिये चले गये। वहां से उन्होंने "अलिफ़" नामक उर्दू का मासिक पत्र सम्पादन करना आरम्भ किया था, जो लाहौर से प्रकाशित होता था। वहीं से पहिले पहल उन्होंने अंग्रेज़ी में एक छोटी सी पुस्तिका हिमालय के दृश्य (Himalayan scene's) प्रकाशित की थी। यह पुस्तिका है तो छोटी सी, पर इस में स्वामी जी ने हिमालय का बड़ा ही भाव पूर्ण दृश्य दिखलाया है। इस हिमालय दृश्य के अन्तर्गत ही-"सुमेरु दर्शन" शीर्षक में सर्व साधारण को यह उपदेशामृत पान कराया है "संसार के हे मनुष्यो! तुम यह अच्छी तरह से जान लो कि युवतियों के कपोलों की लालिमा, मनोहर रत्नों और बहुमूल्य आभूषणों, तथा बड़े २ महलों में सुमेरु की काल्पनिक सुन्दरता और मोहित करने वाले पदार्थों का अंश भी नहीं मिल सकता। और जब तुम अपने आत्म स्वरूप का बोध प्राप्त कर लोगे तो ऐसे ऐसे अगणित सुमेरु तुम्हें अपने आप में दिखाई देंगे। सारी प्रकृति तुम्हारी पूजा करेगी। बादलों से लेकर कङ्कणों तक नीले आकाश से लेकर हरी भूमि तक और आकाश में उड़नेवाले जीवों से लेकर छछून्दर तक, जितने जीव इस संसार में हैं,

सब तुम्हारी आज्ञा पालन करने को तय्यार रहेंगे। कोई देवता भी तुम्हारी आज्ञा टालने का साहस न करेगा।

हे आकाश! अब तू स्वच्छ होजा, भारतभूमि पर अज्ञान से ढके हुये मेघो! दूर हो जाओ। हमारी इस पवित्र भूमि पर मत मंडराओ। हे हिमालय की बर्फ़! तुम्हारा अधीश्वर तुम्हें यह आज्ञा देता है कि तुम अपनी पवित्रता और शुद्धता को स्थिर रक्खो। द्वैतभाव से कलुषित जल कभी इस मैदान में मत भेजो"।

इस निबन्ध में स्वामी रामतीर्थ "माया" शीर्षक में लिखते हैं:—'राम के सामने एक नवयुवक ने सूंघने के लिये एक सुन्दर गुलाब का फूल तोड़ा, ज्योंही उसको सूंघने के लिये नाक के सामने लाया त्योंही फूल में बैठी हुई एक मधु मक्खी ने उसकी नाक के अगले हिस्से में काट खाया। वह नवयुवक मारे दर्द के रोने लगा, उसके हाथ से गुलाब का फूल गिर पड़ा।

क्या प्रत्येक गुलाब के फूल में शहद की मक्खी होती है! निस्सन्देह ऐसा कोई भी विषयों से परिपूर्ण गुलाब नहीं है, जिसमें दुःख रूपी मधु मक्खी न छिपी हो। जो वासनायें रोकी नहीं जाती उनके लिये पीड़ारूपी दण्ड मिलना अनिवार्य है"। खेद है कि हमारे पास समस्त निबन्ध के अनुवाद करने का स्थान नहीं है परन्तु वस्तुतः प्रत्येक भारत सन्तान को यह निबन्ध पढ़ना चाहिये और इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

धर्म महोत्सव
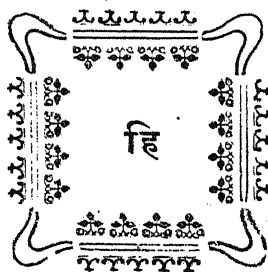
हिमालय पर तप करते हुये करके अपने हृदय में पहले से भी उच्च भाव धारण करके, अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के निमित्त चेष्टा करने लगे। स्वामी जी के संन्यासी होने से पहले ही, उनके विद्यार्थी रहते समय ही लोग उनके व्याख्यानों को बड़े चाव से सुना करते थे। कहते हैं जब छात्रावस्था में स्वामो रामतीर्थ सनातन-धर्म सभाओं में रामकृष्णादि की भक्ति विषयक व्याख्यान दिया करते थे तब उनके व्याख्यान ऐसे भाव पूर्ण होते थे कि व्याख्यान देते २ वे स्वयं रो उठते थे और श्रोतागण भी चाहे जैसे पाषाणहृदय क्यों न हो रोने लग जाते थे। कहने का सारांश यह है कि उनके व्याख्यानों की धूम सनातन धर्म सभाओं में विशेषतः पञ्जाब में मच रही थी। संन्यास लेने से एवं हिमालय पर उन्होंने जो तप

किया था उससे उनकी वक्तृताओं का और भी विशेष प्रभाव बढ़ गया। हमको स्वामी जी के दर्शन का सौभाग्य सन् १६०१ में मथुरा के धर्म महोत्सव में हुआ था'—यह धर्म महोत्सव वहां के शान्ति आश्रम के उद्योग से हुआ था। यह उत्सव बड़ा शानदार हुआ था। इसमें भारतवर्ष के बहुत से नामी नामी विद्वान् सम्मिलित हुये थे। सर्व सम्मति से इस उत्सव में सभापति का आसन स्वामी रामतीर्थ ने ग्रहण किया था। इस उत्सव के सञ्चालकों ने यह नियम रक्खा था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म सम्बन्धी विचारों का मण्डन करे, उसके धर्म में जो अच्छी बातें हों, उनको दिखलावे, परन्तु अपनी वक्तृता अथवा निबन्ध में दूसरों धर्म वालों पर आक्षेप न करें। ऐसी बात न कहे जिससे किसी दूसरे का दिल दुखे। अपने धर्म का समर्थन हो पर दूसरे धर्म वालों का खण्डन न हो ऐसी स्थिति में उत्सव के सञ्चालकों को यही उचित प्रतीत हुआ कि स्वामी रामतीर्थ सभापति का आसन ग्रहण करें। वास्तव में स्वामी रामतीर्थ से बढ़ कर वहां पर कोई व्यक्ति निष्पक्षपाती नहीं था।

जिन लोगों को धर्म महोत्सव के देखने का अवसर प्राप्त हुआ है उन्हें वहीं प्रतीत हुआ कि स्वामी जी के चरित्र में कितना बल था? ऐसी सभा में जहां धर्म सम्बन्धी सभी मतों की आलोचना हो और आलोचक महाशय अपने धर्म सम्बन्धी विचारों की उत्कृष्टता प्रदर्शित करने में अपने प्रतिवादियों की भी कड़ी आलोचना करने को तयार हो जायं, वहां सभापतित्व का कार्य खिलवाड़ नहीं। परन्तु स्वामी राम तीर्थ केवल अपने चरित्र के बल से, केवल प्रेम भरे शब्दों

और मधुर मुसकान से सब झगड़ों को शान्त कर देते थे, वे मत मतान्तर सम्बन्धी अग्नि को प्रज्वलित नहीं होने देते थे। धर्म महोत्सव के तीसरे दिन कुछ अदूरदर्शी वक्ताओं के कारण धर्म सम्बन्धी मत मतान्तर की अग्नि प्रज्वलित हो गई थी कई ईसाई पादरियों ने धर्म महोत्सव के नियमों को भङ्ग करके हिन्दू धर्म पर बड़े कड़े आक्षेप किये थे। हिन्दुओं के आराध्य देव और पूजनीय संस्थाओं के सम्बन्ध में बड़े कटु शब्द कहे थे। सारी सभा में पादरियों के आक्षेप सुनकर शोक और क्रोध की मात्रा बढ़ी हुई थी। सच पूछिये तो और कोई सभापति होता तो सभा में अवश्य दङ्गा हो जाता; क्योंकि मथुरा के हिन्दू विशेषतः चौबे और पण्डों में सहिष्णुता बहुत कम होती है फिर जब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के सम्बन्ध में मिथ्या और जघन्य आक्षेप किये गये तब वहां वालों को क्रोध आना स्वाभाविक ही था। परन्तु स्वामी जी ने बड़ी शांति पूर्वक इस झगड़े को निबटाया था। मुझे स्मरण आता है कि जब पादरी स्काट अपना वह निबन्ध पढ़ चुकते थे, जिसमें वेदों पर आक्षेप थे तब स्वमी रामतीर्थ जी खड़े हुये। उनके खड़े होते ही सारी सभा करतल ध्वनि से गूंज उठी, लोगों को आशा हुई कि अब स्वामी जी भी पादरी स्काट की भांति ईसाइयों के धार्मिक ग्रन्थ बाईबिल की धज्जियां उड़ावेंगे। पर वहां तो बात ही दूसरी निकली। भला राम बादशाह ने कभी किसी का खण्डन करना अथवा कटुशब्द कह कर किसी का जी दुखाना, सीखा कहां था? मुझे उनकी उस वक्तृता का पूरा स्मरण तो है नहीं, परन्तु इतना अवश्य याद आता है कि स्वामी जी ने अपनी स्वाभाविक ओजस्विनी वक्तृता द्वारा

पादरी स्काट के सब आक्षेपों को निर्मूल सिद्ध कर दिया और अन्त में उन्होंने पादरी स्काट से कहाः—'पादरी साहब ! यदि आपकी शङ्काओं का वेदों के विषय में मेरे इतने वक्तव्य से समाधान नहीं हुआ हो तो आप चाहे जिस समय मुझ से मिलकर अपनी शङ्कायें दूर कर सकते हैं" । 'पादरी स्काट ने कुछ उत्तर नहीं दिया, कुछ उपेक्षा के ढङ्ग पर हंस कर और बहुत अच्छा कह कर चुप होगये। स्वामी रामतीर्थ जी की वक्तृता सुनकर सारी सभा ईसाई पादरियों के कुत्सित व्यवहार को भूल गई* । मथुरा में स्वामीजी की वक्तृताओं का इतना प्रभाव रहा था कि धर्म महोत्सव की समाप्ति हो जाने पर मथुरा निवासियों के विशेष आग्रह से उन्होंने सज्जन सुबोधनी सभा, जुबली एसोसियेशन आदि कई स्थानों में उपदेश दिया था। उन दिनों में मथुरा में स्वामी जी के उपदेशों के कारण कुछ जागृति होगई थी। इससे पहले मथुरा में ऐसा उत्साह कभी देखने में नहीं आया। स्वामी जी के व्याख्यानों

*इस धर्म महोत्सव में वृन्दावन के श्रीयुत श्रीराधाचरण गोस्वामी जी की " सनातनधर्म" और वैष्ण धर्म" पर बड़ी प्रभावशालिनी वक्तृतायें हुई थी एक मुसलमान सज्जन ने जिसका नाम मुझे इस निबन्ध के लिखते समय स्मरण नहीं आता है, "इस्लाम मत क्या है ! इसपर बड़ी हृदयग्राही वक्तृता दी थी वक्तृता में बड़े उदार भाव थे, उक्त मुसलमान सज्जन ने मुसलमानों के पैगम्बर मुहम्मदसाहब और कुरानशरीफ़ की तारीफ़ करते हुये कहा था:— "दीन इस्लाम हिन्दुओं से नफरत करना नहीं सिखलाता है, हिंदू मुसलमान दो नहीं, एक हैं। मुझे भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के नाम लेने में जो आनन्द मिलता है और उनकी गीता के पाठ करने में जो शान्ति प्राप्त होती है वह आनन्द और वह शान्ति मुझे कहीं भी नहीं मिलती" ।

में विवक्षण आकर्षण शक्ति होती थी, जो एक वार उनकी वक्तृता सुन लेता था, फिर उसकी सदैव लालसा व्याख्यान सुनने की बनी रहती थी। यही कारण था कि बार २ उनके उपदेशों के सुनने से लोगों को तृप्ति नहीं होती थी और उनके बचनामृत पान करने की इच्छा बनी रहती थी।

धर्म्म महोत्सव में वक्तृता

स्वामी जी का संदेश द्वेष का नहीं प्रेम का होता था। वे धर्म्म सम्बन्धी व्याख्यानों के देते समय किसी दूसरे मत का खण्डन नहीं करते थे। उनके प्रत्येक शब्द में प्रेम होता था, वे अपने मधुर शब्दों में आध्यात्मिक सम्बन्धी गम्भीर विचारों को समझाते थे। स्वामी जी की हार्दिक इच्छा थी कि मनुष्य धर्मसम्बन्धी मतमतान्तर के झगड़ों में न फंस कर परमब्रह्म परमात्मा की सच्ची उपासना अर्थात् अपने जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त करें। धर्म का अत्युच्च उद्देश्य आत्मरक्षा और देश सेवा है उसमें प्रवृत हों। दीन दुखियों और दरिद्रों के क्लेश निवारण करें। सच पूछिये तो इससे बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। पर हाय! काल की कुटिल गति देखिये कि हमारे देश में ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है जो धर्म के नाम पर ही धन बटोरते हैं। मथुरा के धर्ममहोत्सव में स्वामी जी ने सभापति की हैसियत से जो वक्तृता दी थी उसमें उन्होंने वही प्रेम का सन्देशा लोगों को दिया था। अपने उस व्याख्यान में एक स्थान पर स्वामी जी कहते हैं:—"प्रेम शब्द भी कैसा प्यारा है? कहावत है कि प्रत्येक शरीर का एक प्रेमी होना चाहिये सच्चे हिन्दू को केवल प्रेम (भक्ति) की ही इच्छा

होती है। कुछ ऐसी पवित्र आत्माएं होती हैं जो प्रसन्नता पूर्वक अपना सब कुछ केवल पवित्र (ईश्वरीय) प्रेम के निमित्त त्याग देती है। हमको उस प्रेम के मूल को ढूंढ़ने की चेष्टा करनी चाहिये।" इसके आगे उन्होंने चैतन्य महाप्रभु आदि की आदर्श भक्ति का उल्लेख करते हुये कहाः—"सच्चे प्रेम में मनुष्य अपने आप को भूल जाता है। उसको किसी बात की लज्जा नहीं रहती है उसे दुनिया का कुछ ज्ञान नहीं होता और छोटे से ममत्व के बन्धन से भी पार पा जाता है। वह प्रेम ही धर्म है"।

इस व्याख्यान में एक स्थान पर स्वामी जी ने कहा था कि वेदान्त का उद्देश्य दुनिया के दुख, सुख भाग्य मोहादि से विमुक्त कराना है। वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने पर मनुष्य शोक भय और चिन्ता से विमुक्त हो जाता है। धर्म का उद्देश्य है कि मनुष्य के चरित्र में अटल बल प्राप्त हो। ' स्वामी जी की धर्म महोत्सव में जैसी सभापति की हैसियत से प्रारम्भिक वक्तृता हुई थी वैसीही उनकी अन्तिम वक्तृता (Final specch) में बड़े निर्भीक विचार थे। भारत वर्ष की परिस्थिति के सम्बन्ध में उन्होंने वक्तृता देते हुये कहाः—"कल भारतधर्म महामण्डल के प्लेटफ़ार्म पर इस विषय पर वक्तृता दूंगा। चाहे कलेकृर साहब भी उसको सुनने आवें सच्ची खरी और सही बातें कहूंगा।"

साधारण धर्म सभा

धर्म महोत्सव में एक साधारण धर्म-सभा स्थापित करने का निश्चय हुआ था जिसके उद्देश्य स्वामी जी ने जो निश्चित किये थे उनसे पता लगता है कि वे धर्म सम्बन्धी आपस में जो द्वेष भाव फैला हुआ है उसको दूर करना चाहते थे। इस सभाके उन्होंने छः उद्देश्य स्थिर किये थे सच्चे वेदान्त की शिक्षायें वर्त्तमान समय की आवश्यकताएं और साथही साथ विज्ञान की वृद्धि करना साधारण धर्म में सबही धर्मावलम्बी जो चाहे जिस धर्म को क्यों न मानता हो, किसी धर्म को न मानता हो सम्मिलित हो सकता है, जो किसी दूसरे धर्म को मानते हैं। उन को अपने धर्मके छोड़ने की आवश्यकता नहीं है जबवे साधारण धर्म को ग्रहण करें। साधारण धर्म का उद्देश्य अलग अपना एक रूप धारंण करने का नहीं किन्तु भारतवर्ष के भिन्न भिन्न सम्प्रदाय और मतों की एकता स्थापन करना है उसका उद्देश्य प्रत्येक सम्प्रदाय की अनुयायियों में प्रेमभाव उत्पन्न करना है स्वामी जी ने साधारण धर्म के प्रत्येक अनुयायी के शारीरिक व्यायाम को भी रक्खा था। परन्तु शोक है कि उक्त सभा चल नहीं सकी जिन लोगों ने इस सभा का भार अपने ऊपर लिया था। उन लोगों की असावधानी से प्रस्तावित सभा जहाँ की
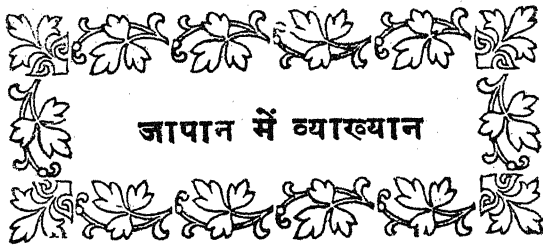
तहाँ रह गई यदि यह सभा स्थापित होती तो सम्भव है कि स्वामी जी का जो उद्देश्य था कि आपस में मतमतान्तर सम्बन्धी द्वेष भाव दूर होजाय स्वर्गीय शुद्ध प्रेम की मूर्ति स्थापित हो उसकी पूर्त्ति हो जाती परन्तु यह कुछ न हुआ। इस साधारण धर्म का एक उद्देश्य यह भी रक्खा गया था कि सरकारी विश्वविद्यालयों State Universities के कार्यों में छात्रों को चरित्र निर्माण सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करके सहायता पहुंचाना, प्राणि शास्त्र तथा अन्य वैज्ञानिक विषय और आर्वाचीन एवम् प्राचीन दर्शन पर नियमित व्याख्यान होना, विज्ञान की वृद्धि और मौलिक विचारों के विस्तार करते का पूर्ण प्रयत्न करना। शोक है इस देश के कार्य करने वालों का नितान्त अभाव होने के कारण स्वामी रामतीर्थ जी के यह विचार कार्य में परिणित नहीं होने पाये थे।

विदेश यात्रा और मसजिद में व्याख्यान

मथुरा के धर्म महोत्सव के पश्चात् सन् १९०२ में स्वामी रामतीर्थ ने मिश्र (Egtpt) जापान और अमेरिका की यात्रा की। इन देशों में लग भग उन्होंने तीन वर्ष तक प्रवास किया था। स्वामी जी के उपदेशों का विदेशों में भी अच्छा प्रभाव रहा था। यद्यपि स्वामी जी हिन्दुस्तानी थे उन्हें अपनी भारत माता से असीम प्रेम था उन्होंने भारत माता की जन्म भर सेवा की थी तथापि स्वामी रामतीर्थ किसी देश विशेष के अथवा जाति विशेष के नहीं थे। सारी वसुन्धरा उनकी थी जिस प्रकार वे रङ्ग विशेष जाति विशेष और धर्म विशेष का पक्ष नहीं करते थे वैसे ही सभी रङ्ग जाति और धर्म के लोग उनका आदर करते थे। जहां कहीं *राम बादशाह जाते थे वहाँ के लोग उनके पसीने के स्थान में ख़ून बहाने को तैयार हो जाते थे। मिश्र में मुसलमानों ने यह विचार न कर के कि वे हिन्दू हैं उनका बड़ी धूम धाम से स्वागत किया। वहां पर उन्होंने मुसलमानों के अनुरोध से फ़ारसी भाषा में उनकी मसज़िद में व्याख्यान दिया था।

* स्वामी जी अपने को रामबादशाह कहा करते थे।

इस व्याख्यान का वहां के मुसलमानों पर विशेष प्रभाव हुआ था। जैसा मिश्र में स्वामी जी का यह व्याख्यान हुआ था यदि स्वामी जी के वैसे व्याख्यान कुछ दिनों तक भारत वर्ष में होते तो आज यहां के हिन्दू मुसलमानों में जो भेद भाव दिखलाई पड़ रहा है वह कभी का दूर हो जाता। पर इस भारत माता के दुर्भाग्य के कारण स्वामी रामतीर्थ बहुत दिनों तक जीवित ही नहीं रहे अस्तु मिश्र के मुसलमान स्वामी जी के व्याख्यानों पर अत्यन्त मोहित हो गये थे।

जापान में व्याख्यान

मिश्र से स्वामी जी जापान गये स्वामी जी के चरित्र में एक विशेषता थी कि जहाँ कहीं वे जाते थे वहीं लोग उन्हें अपना ही समझते थे। जापानी उन्हे जापानी समझते थे, अमेरिकन उन्हें अमेरिकन कहते थे मुसलमान उन्हें मुसलमान ही समझते थे। जापानियों ने भी उनका कुछ कम आदर नहीं किया था। टोकियो की सरकारी यूनिवर्सिटी के संस्कृत के प्रोफेसर टाकू कुतसू (Taku kutsu) ने स्वामी जी के सम्बन्ध में कहा थाः—

केवल अभीतक यही एक सच्चे दार्शनिक विद्वान देखे गये हैं। जापानियों के देश प्रेम और जापान की जो थोड़े काल में ही आशातीत उन्नति हुई है उसकी प्रशंसा बराबर स्वामी जी अपने व्याख्यानों और लेखों में किया करते थे। भारतवासियों को बार २ उन्होंने जापानियों से देश भक्ति की शिक्षा ग्रहण करने के लिये अनुरोध किया था परन्तु इस पर भी उन्होंने जापान में सफलता का रहस्य जो व्याख्यान दिया था उसमें उन्हों ने जापानियों से स्पष्ट कहा थाः—एक रासायनिक

क्रिया करने वाला मज़दूर कुछ रसायन शास्त्र ज्ञाता नहीं हो सकता क्योंकि वह क्रिया तो कर लेता है परन्तु उसे उसका ज्ञान नहीं होता इसी तरह से कुछ बातें जान लेने से ,कोई देश सब बातों का ज्ञाता नहीं हो सकता। जापान में स्वामी जी ने सफलता का रहस्य जो व्याख्यान दिया था, उसको हम यहां पर प्रकाशित करते हैं। जिससे पाठकों को ज्ञात होगा कि स्वामी जी ने जापान में कैसे निर्भीक और उच्च विचार प्रगट किये थे।
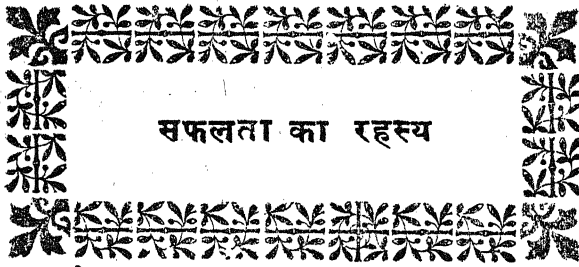
सफलता का रहस्य

प्यारे भाइयो !

क्या यह विलक्षण बात नहीं है, कि जिस विषय का जापान ने उपयोग किया है, उसी विषय पर एक भारतवासी यहां आकर व्याख्यान दे, तथापि कई कारणों से मैं आपके सामने शिक्षक के रूप में खड़ा हूं।

किसी विचार को बुद्धिमानी के साथ कार्य में परिणत करना और बात है और उस बिचार के मूल तत्वों को जान लेना जुदी बात है। कुछ सामान्य उद्देश्य के अनुसार कार्य करने से एकाध राष्ट्र का अभ्युदय होता दिखाई पड़ता है, परन्तु यदि राष्ट्रीय हृदय ने उन तत्वों को अच्छी तरह से नहीं समझ लिया है तो उस राष्ट्र का अपने स्थान से गिर जाने का बहुत कुछ भय है। एक मज़दूर जो अच्छी तरह से रासायनिक क्रिया कर लेता है, वह कुछ रसायन शास्त्र का पंडित नहीं हो सकता है। क्योंकि क्रिया कर लेने पर भी उसे उसका कुछ ज्ञान नहीं है इञ्जन को चलाने वाला एक फ़ायरमैन कुछ इसलिये इञ्जीनियर नहीं हो जाता है कि वह अच्छी तरह से एञ्जिन चला लेता है, अथवा निरा यान्त्रिक (Machinical)

होता है। आपने यह बात पढ़ी होगी कि एक डाक्टर घाव पर पट्टी बाँध कर रोज एक तलवार से उसे छुला कर सात दिन में उस घाव को आराम करा देता था। घाव के चंगे होने का कारण यही था कि वह डाक्टर घाव पर पट्टी बांध देता था। खुला नहीं रहने देता था परन्तु वह यही समझे हुए था कि तलवार के स्पर्श से ही घाव को आराम हो जाता है और रोगी भी यही समझे हुये थे। इसका परिणाम क्या हुआ? परिणाम यह हुआ कि इस मिथ्या धारणा के कारण उसको उन रोगियों के इलाज में असफलता होने लगी, जिन के घावों में पट्टी बांधने के अतिरिक्त और भी कुछ इलाज की आवश्यकता थी। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि यथार्थ क्रिया और यथार्थ उपदेश साथ साथ हों। दूसरे मैं जापान को अपना देश और जापानियों को अपने देशवासी जैसा समझता हूं। मैं यह साबित कर सकता हूं कि आप के पूर्वज, प्रारम्भ में भारत वर्ष से यहां आये थे। तुम्हारे पूर्वज, मेरे भी पूर्वज थे मैं यहां पर तुम्हारे साथ भाई की हैसियत से मिलने आया हूं न कि एक विदेशी यात्री की तरह से। दूसरे प्रमाण से भी मुझे तुम्हारे शिक्षक बनने का अधिकार है मैं जन्म से ही स्वभाव आचारण से चित्त वृत्ति से जापानी हूं। अस्तु अब मैं अपने प्रारम्भिक बचनों को यहीं समाप्त करके मुख्य विषय की ओर आता हूं।

सफलता का रहस्य गुप्त रहस्य नहीं है वह सब पर प्रकट है। प्रत्येक व्यक्ति इस विषय पर कुछ न कुछ कह सकता है और शायद आप लोग इसके साधारण सिद्धान्त सुन भी चुके होंगे परन्तु यह विषय इतना आवश्यक है कि सर्व साधारण के

हृदय पटल पर इस विषय को अङ्कित करने के लिये जितना कहा जाय उतना ही थोड़ा है।

१-साधन सफलता प्राप्ति

सब से पहले प्रकृति से यही प्रश्न कीजियेगा पानी के बहते हुये झरने के समान पुस्तकें और शिलारूपी उपदेश हमें यही शिक्षा दे रहे हैं कि निरन्तर उद्योग करते रहो। प्रकाश हमें दृष्टि की शक्ति प्रदान करता है। समस्त जीव मात्र में चैतन्य का सञ्चार करता है। अच्छा हमको देखना चाहिये कि प्रकाश क्या होता है? मैं उसके लिये आपको उस मामूली प्रकाश अर्थात् लेम्प का ही उदाहरण देता हूं। प्रदीप अर्थात् लेम्प की उज्ज्वलता और आभा में रहस्य यही है कि वह दीपक अपना तेल और बत्ती अच्छी तरह से ख़र्च करता है तेल बत्ती अथवा क्षुद्र अहङ्कार जल रहा है इसलिये उस का स्वाभाविक परिणाम तेज है। लेम्प अर्थात् दीपक आपको यह शिक्षा देता है कि जहां आपने उद्योग से जी चुराया वहां आपका जीवन प्रदीप भी शीघ्र बुझा, यदि आप अपने शरीर सुख के लिये भोगविलास में फंस गये यदि अब आप विषय वासना में अपने समय का दुरुपयोग करने लगे तो आप के जीवन की कोई आशा नहीं है दूसरे शब्दों में इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि आलस्य आपके लिये मृत्यु है और केवल उद्योग ही आपका जीवन है।

किसी बंधे हुये पानी के गड्ढे को देखिये और बहती हुई नदी को देखिये। बहती हुई नदी और बंधे हुये पानी में यही अन्तर है कि बहती हुई नदी का पानी स्वच्छ, सफेद,

ताज़ा पीने योग्य और सुन्दर प्रतीत होता है। लेकिन दूसरी ओर देखो कि गढ़े का बंधा पानी कैसा गन्दा दुगन्धि युक्त सड़ा हुआ और मनमें घृणा उत्पन्न करनेवाला होता है। यदि आप सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो नदी के बहते हुये पानी के समान उद्योग को अपनाइयेगा। इस संसार में ऐसे मनुष्यों के लिये कोई आशा नहीं है जो अपने तेल और बत्ती को केवल इस कारण से बचा रखते हैं कि वह खर्च न हो जाय नदी की नीति का अवलम्बन करो सदैव उन्नति करते रहना अपने को दुसरों में मिला लेना परिस्थिति के अनुसार सदैव चलना और सदा उद्योग करते रहना यही नदी की नीति है। उद्योग! उद्योग! निरन्त उद्योग करते रहना ही सफलता का प्रथम सिद्धान्त है...यदि आप इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य करेंगे तो आपको पता लग जावेगा कि जितना गिरना सहज है उतना ही ऊंचा होना भी है।

२-साधन स्वार्थ त्याग

प्रत्येक व्यक्ति श्वेत पदार्थों को चाहता है अच्छा हमको श्वेत पदार्थों के सार्वजनिक प्रेम का कारण देखाना चाहिये कि श्वेताङ्ग की सफलता का कारण क्या है! काले पदार्थों से सर्वत्र घृणा की जाती है उनका पदच्युत और त्याग किया जाता है इस बात को विचार करके श्वेताङ्गों की सफलता का कारण ढूंढना चाहिये। पदार्थ विज्ञान Physics हमको रङ्ग दिखलाई पड़ने के कारण बतलाता है। लाल रङ्ग लाल नहीं होता हरा रङ्ग हरा नहीं होता काला रङ्ग काला नहीं होता। जो कुछ दिखलाई पड़ता है वस्तुतः वह नहीं है गुलाब अपना लाल रङ्ग छोड़ देने से और भी प्रिय मालूम होता है

सूर्य किरणों के और और रङ्गों को यदि वह गुलाब खींच ले तो कोई नहीं कह सकता कि उनमें वे रङ्ग आगये। पेड़ का हरा पत्ता प्रकाश से और सब रङ्गों को खींच कर जिस अपने हरे रङ्ग को त्याग देता है छोड़ देता है उसी हरे रङ्ग से वह हरा और सरसब्ज बना रहता है। काली वस्तुओं में यह स्वाभाविक बात है कि वे और सब रङ्गों को खींच लेती हैं परन्तु अपना रङ्ग नहीं बदलती नहीं छोड़ती उनमें स्वार्थ त्याग और दान धर्म का लेश भी नहीं होता वे जरा सी किरण त्याग नहीं करतीं। वे जो दूसरों से लेती हैं उसका भी कुछ अंश नहीं त्याग करतीं उनका यह स्वभाव शिक्षा देता है कि जो व्यक्ति अपनी प्राप्ति में से अपने भाइयों को पड़ोसियों को कुछ भी न दे वह कोयल से भी काला होता है। दान देना ही आमदनी का एक मात्र द्वारा है। श्वेत पदार्थों की सफलता का कारण उन का संपूर्ण त्याग और जो कुछ मिले वह दूसरों को दे देना है। श्वेताङ्गों के इस गुण का ग्रहण कीजियेगा तब निस्सन्देह आप को सफलता प्राप्त होगी। श्वेताङ्ग कहने से आपने मेरा क्या मतलब समझा है? क्या यूरोपियन हैं? नहीं केवल यूरोपियन ही नहीं, सफेद शीशा, सफ़ेद मोती, सफेद बन कबूतर सफेद बर्फ़—ये सब शुद्धता और साधुता के चिन्ह आपके शिक्षक हैं। इस लिये इनसे स्वार्थ त्याग की शिक्षा ग्रहण करो और आपको जो कुछ मिले वह दूसरो को दो। स्वार्थ भाव से किसी वस्तु को ग्रहण करना छोड़ दीजियेगा आप भी श्वेत हो जाओगे, एक बीज को वृत्त में परिणित होने के लिये अपना स्वार्थ त्याग करना पड़ा है संपूर्ण स्वार्थ त्याग का अन्तिम परिणाम ही फल प्राप्ति है मैं समझता हूं कि समस्त

शिक्षक मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि जितना ज्ञान हम दूसरों को देंगे उसकी उतनी ही वृद्धि होगी।

३-साधन-निरभिमान

यह विद्यार्थियों से छिपा हुआ नहीं है कि जब वे अपनी साहित्य सभाओं में व्याख्यान देने के लिये खड़े होते हैं तब मैं व्याख्यान देता हूं—यह विचार उनके हृदय में उठते ही उनकी सारी वक्तृता किरकिरी होजाती है। काम करते समय आप "ममत्व" को भुला दीजियेगा और उनमें जुट जाइयेगा। आप को सफलता अवश्य प्राप्त होगी यदि आप विचार करते हो तो विचार में ही मग्न हो जाइयेगा आपको अवश्य सफलता प्राप्त होगी। यदि आप उद्योग करते हों तो स्वयं उद्योग स्वरूप हो जाइयेगा, बस आपको इससे ही सफलता प्राप्त होगी।

यहां पर मुझे दो राजपूतों की कहानी याद आती है, वे भारतवर्ष के मुगल सम्राट अकबर के यहां नौकरी करने के लिये गये थे। अकबर ने उनसे उनकी योग्यता के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि "हम वीर हैं" अकबर ने उनसे इस विषय का प्रमाण चाहा था। इस पर दोनों राजपूत बहादुरों ने म्यान में से तलवारें निकाल लीं। वे अकबर के दरबार में बिजली के समान चमकने लगीं। तलवारों की जगमगाहट ही दोनों भाइयों की वीरता का प्रमाण था क्षणभर में ही बिजली के समान जगमगाहट करनेवाली तलवारें एक दूसरे के शरीर से भिड़ गईं। एक दूसरे की छाती के ठीक सामने अपनी अपनी तलवारों की नोंके करके आपस में भिड़ गये।

और बड़ी शान्ति से दोनों ने अपनी वीरता का प्रमाण दिया। दोनों भूतल शायी होगये दोनों की आत्मा एक दूसरे से मिल गई और यह प्रमाणित होगया कि वे दोनों वीर थे। वर्तमान उन्नति के समय दिल को दहलाने वाली बात पर ध्यान देने के लिये नहीं कहता किन्तु इससे जो शिक्षा प्राप्त होती है, उसकी बात कहता हूं। शिक्षा यह है कि अपने उद्योग में क्षुद्र अहंकार का त्याग कीजिये, फिर सफलता आपको होगी। स्मरण रहे बिना अहङ्कार का परित्याग किये हुये सफलता दूसरे प्रकार से प्राप्त नहीं हो सकती है। अब मैं क्या यह न कहूंगा कि सफलता प्राप्त करने के पूर्व अपने उद्योग में सफलता के निमित्त तल्लीन हो जाओ।

४-साधन सर्वव्यापी प्रेम

प्रेम भी सफलता प्राप्त करने का एक साधन है। दूसरों से प्रेम करो और उनका प्रेम प्राप्त करो, यही अन्तिम साधन है। यदि हाथ जीवित रहना चाहता है; तो उसको चाहिये कि शरीर के समस्त अवयवों से प्रेम करे। यदि वह अलग रहना चाहे और यह ख्याल करने लगे कि मेरी कमाई वस्तुओं से समस्त शरीर क्यों लाभ उठाता है, तो उस हाथ के लिये कुछ सहायता की आशा नहीं है। उसे शीघ्र मृत्यु प्राप्त होगी। यदि स्वार्थ में ही फंसा रहना है तो हाथ को चाहिये, कि उसने लेखनी अथवा तलवार के परिश्रम से जो कुछ भोजन की सामग्री प्राप्त की है उसको अपने में ही अर्थात् हाथ में भर ले अपने परिश्रम के फलस्वरूप भोजन की सामग्री से शरीर के अन्य अवयवों को वञ्चित रक्खे। यह सच है कि

इस प्रकार से अन्न भरने और मधु मक्खी के काटने से हाथ मोटा हो जायगा, परन्तु यह मोटाई उसको लाभ के बदले, उलटी हानि पहुंचाने वाली होगी। फूलने का अर्थ बढ़ना नहीं है और इस तरह फूला हुआ हाथ अपने स्वार्थ के कारण अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा। हाथ तब ही जीवित रह सकता है, जब वह शरीर के दूसरे अवयवों की भलाई में अपनी भलाई समझे, सब के हित से अपना अलग हित समझ लेने से हाथ जीवित नहीं रह सकता।

प्रेम का बाह्य आविष्करण ही सहयोगिता अर्थात परस्पर की सहायता है। सहयोग के उपयोगिता के विषय में आप कई बार सुन चुके हैं। इसलिये मुझे इस पर विशेष रूप से कहने की आवश्यकता नहीं है। सहयोगिता अर्थात् दूसरे की सहायता हार्दिक प्रेम से होनी चाहिये। प्रेम करो और आपको सफलता अवश्य होगी। एक व्यापारी जो ग्राहक के स्वार्थ की ओर ध्यान नहीं देता है कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। यदि वह अपनी उन्नति चाहता है तो उसे अपने ग्राहकों से प्रेम करना चाहिये अपने हृदय से उनके हित की करनी चाहिये।

५-साधन प्रसन्नता

सफलता का सब से बड़ा भारी एक साधन प्रसन्नता भी है। मेरे भाइयो! आप स्वभाव (जन्म) से ही प्रसन्न हैं। आपके मुखों पर प्रसन्नता देखकर मुझे आनन्द आ रहा है। आप हंसनेवाले पुष्प हैं आप मनुष्यताकी हंसनेवाली कलियां हैं। आप आनन्द के साक्षात स्वरूप है। बस मैं यही चाहता हूं

कि आप अपने जीवन की इस विशेषता को अन्त समय तक ऐसी ही रखियेगा। अब हम को यह सोचना चाहिये कि हम इस प्रसन्नता को अन्त समय तक कैसे स्थिर रख सकते हैं ?

परिश्रम करते हुए अपने परिश्रम के फल की चिन्ता मत करो। भविष्य की मत सोचो किसी बात की चिन्ता मत करो सफलता और असफलता का विचार मत करो—कर्म-कर्म के लिये करो कर्म करना ही उसका फल है। बीती हुई बातों का सोच न करो और भविष्य की बातों की चिन्ता न करके कर्म कीजिये। उद्योग कीजिये, समस्त अवस्थाओं में यह भाव आपको प्रसन्न रक्खेगा। बीज का काम पूरा होने के लिये आवश्यक भूमि पानी वायु इत्यादि पदार्थ उस बीजकी और एक अवाधित आकर्षण शक्ति द्वारा आकर्षित किये जायंगे। उसी प्रकार प्रसन्न और उद्योगी मनुष्य की सहायता करने में प्रकृति बाध्य है। विशेष प्रकाश ज्ञान की प्राप्ति का मार्ग यही है, इस समय प्रकाश (ज्ञान) जो आपके पास है उसका सदुपयोग कीजिये। यदि आपको अंधेरी रात्रि में बीस गज़ की दूरी पर जाना है और आपके हाथ में जो प्रदीप है उसका प्रकाश दस कदम तक ही जाता है, तो इस बात की चिन्ता मत करो कि सारा मार्ग अन्धकार मय है। किन्तु जितने मार्ग में प्रकाश है उतने में चले जाइयेगा। तो बाकी दश गज की दूरी पर भी स्वतः ही प्रकाश हो जायगा और आपका मार्ग आपको दिखलायी पड़ेगा। इस तरह आप को कोई भी स्थान अन्धकारमय प्रतीत नहीं होगा। इसी तरह सच्चे काम करनेवाले के मार्ग में रुकावटें नहीं होती हैं। तब

हम क्यों कार्य के परिणाम के विचार से अपने प्रसन्न चित्तों को अप्रसन्न करें। जो मनुष्य तैरना नहीं जानते हैं और अचानक झील में गिर पड़ते हैं और वे अपने शरीर का बराबर वजन करके खड़े रहें तो वे डूबने से बच सकते हैं। मनुष्य का विशिष्ट गुरुत्व (Specific gravity) पानी से कम होने के कारण वह पानी पर आपही आप तैरता रहता है। परन्तु साधारण मनुष्य घबड़ा कर, बचने के लिये चेष्टा करते हैं, जिससे डूब जाते हैं बस इसी तरह से भविष्य की सफलता के लिये चिन्ता करते करते असफलता प्राप्त हो जाती है।

अच्छा अब हमको देखना चाहिये की वह कौन सा विचार है जिसके कारण भविष्य और यश की चिन्ता रहती है। वह ठीक इस तरह से है कि एक मनुष्य अपनी परछांही पकड़ने के लिये दौड़े और वह उसके पीछे दौड़ता ही रहे तो भी वह उस के पकड़ने में समर्थ नहीं हो सकता है। परन्तु यदि वह घूम जाय और अपनी परछांही की ओर पीठ करके, सूर्य की ओर मुह करें तो फिर देखिये क्या होता है? वह परछांही उसके पीछे पीछे दौड़ने लगती है। इसी प्रकार आप सफलता अथवा यश प्राप्ति की ओर पीठ कीजिये-फल का विचार छोड़ दीजिये और अपने वर्तमान कर्त्तव्य पालन में अपनी सब शक्ति लगा दीजिये उसी समय सफलता आपको प्राप्त होगी। और वह आपका पीछा नहीं छोड़ेगी। सफलता के पीछे मत दौड़िये, अपना अन्तिम निश्चय सफलता को स्थिर न कीजिये तब तो सफलता आपको ढूंढ़ती फिरेगी। मेजिस्ट्रेट को न्याय के लिये किसी दल अथवा मुद्दई मुद्दालय वकील और किसी अर्दली चपरासी को अपना न्यायालय बनाने के लिये, बुलाने

की आवश्यकता नहीं होती है। किन्तु मेजिस्ट्रेट को न्याय के आसन पर बैठना चाहिये कि सारा दृश्य उसके सामने स्वयं ही उपस्थित होजाता है। सो मेरे प्यारे मित्रो! जो कुछ आपको कार्य करना है प्रसन्न चित्त होकर कीजिये, सफलता आपके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहेगी।

६-साधन निर्भीकता

इसके पश्चात् जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह आप के अनुभव से ही बतलाना चाहता हूं कि सफलता प्राप्ति का छोटा साधन निर्भीकता भी है। केवल एक दृष्टि से सिंह भी पाला जा सकता है। शत्रु भी प्रेमदृष्टि से शान्त किये जाते हैं केवल एक मात्र निर्भीकता के कारण, विजय लाभ हो सकता है। मैं हिमालय के घने जङ्गलों में घूमा हूं मुझे शेर रीछ भेड़िये और बहुत से जङ्गली जानवर दिखलाई पड़े हैं परन्तु उन से मेरी कभी कुछ क्षति नहीं हुई। जङ्गली जानवर मेरे सामने आगये उनसे मेरी चार निगाह हुई वे भयानक जीव मारे डरके मेरे सामने से भाग गये यह निर्भीकता की विशेषता है। जिसके कारण आप को कोई हानि नहीं पहुंचावेगा।

शायद आप लोगों ने देखा होगा कि बिल्ली के सामने कबूतर अपनी आंखें बन्द कर लेता है। शायद कबूतर सोचता है कि वह बिल्ली को नहीं देखता है इसलिये बिल्ली भी उसे नहीं देखती, इसका परिणाम क्या होता है? परिणाम यह होता है कि बिल्ली उस पर झपटती है और कबूतर को खा जाती है। निर्भयता से एक शेर भी सीधा हो जाता है और जो डरता है उसको एक बिल्ली भी खा जाती है।

शायद आपने यह बात देखी होगी कि जिसका हाथ कांपता है वह एक वर्त्तन से दूसरे वर्त्तन में कोई चीज अच्छी तरह से नहीं उंडेल सकता है। निश्चय जानिये की वह चीज़ को उंडेलते समय गिरा देगा। पर जो हाथ निडर होकर कोई चीज़ उंडेलेगा वह चाहे जितनी क्यों न बढ़िया और महंगी हो उसकी एक बूंद भी ज़मीन पर बिना गिराये, उंडेल देगा यहां पर भी प्रकृति बिना बोले, मूक व्याख्यानों, से निर्भीकता की शिक्षा दे रही है।

एक बार एक पञ्जाबी सिपाही एक जहाज पर असाध्य रोग से पीड़ित था। और डाक्टर ने उसको जहाज पर से समुद्र में फेंकने के लिये शाही हुक्म दे दिया। प्रायः डाक्टर लोग ऐसे ही आज्ञा दे दिया करते हैं। सिपाही को डाक्टर की इस आज्ञा का पता लग गया। जब प्राणों की नौबत आ जाती है तब साधारण व्यक्तियों में निर्भीकता का सञ्चार हो जाता है। इस आज्ञा को सुनते ही वह निडर होकर बड़े जोश के साथ उठ बैठा और सीधा डाक्टर के पास गया और उसकी ओर पिस्तौल सीधी करके, कहने लगाः—"क्या मैं बीमार हूं? क्या आप सचमुच ऐसा कहते हैं? मैं आपके अभी गोली मार दूंगा"! डाक्टर ने उसी समय स्वस्थता का प्रमाण पत्र दे दिया। निराशा निर्बलता का चिन्ह है, उसे छोड़ो। निर्भीक रहने से पूर्ण शक्ति प्राप्त होती है मेरे निर्भीकता के शब्द पर ध्यान दो। निर्भीक रहो।

७-साधन स्वावलम्बन

"स्वावलम्बन" आत्म निर्भर सफलता का अन्तिम साधन है

अन्तिम होने पर भी यह साधन मुख्य है। अगर मुझ से कोई कहे कि समस्त तत्वज्ञान-मुझे एक शब्द में दो तो मैं कहूंगा कि "स्वावलम्बन" आत्मज्ञान है। हे मनुष्यो! सुनो तुम अपने को पहचानो। यह सत्य है और इसका अक्षर अक्षर सत्य है कि अगर आप अपनी सहायता स्वयं करोगे तो परमात्मा भी आप की सहायता करेगा। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि परमात्मा आप की सहायता करने के लिये तुला हुआ है। आप इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि आप का आत्मा ही परमेश्वर है, सवव्यापक और सर्वशक्ति मान है। यह तत्व है सत्य है इसकी सत्यता अनुभव से जानी जा सकती है। सचमुच आप अपने पर निर्भर रहिये, आप प्रत्येक वस्तु प्राप्त कर सकेंगे। आपके लिये कोई बात असम्भव नहीं है।

शेर जङ्गल का राजा होता है शेर अपने ऊपर ही निर्भर रहता है। शेर वीर बलवान और सब कठिनताओं पर विजय प्राप्त करने वाला होता है क्योंकि उसको अपने पर विश्वास होता है जब पहले ही पहले ग्रीक लोगों ने भारतवर्ष में हाथियों को देखा तो उन्होंने हाथियों को चलते फिरते पहाड़ कहा था। पर इन हाथियों को सदैव अपने दुश्मनों से डर रहता है। वे झुण्डों में रहते हैं जब वे सोते हैं तब उनके झुण्डों में बारी बारी से हाथी पहरा देते हैं। उनमें से किसी को अपने पर और अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं होता है। वे अपने को निर्बल समझते हैं, इसलिये सृष्टि के नियमों के अनुसार उनका निर्बल रहना स्वाभाविक ही है। सिंह के एक आक्रमण से ही हाथी डर जाते हैं, उनका झुण्ड तितर बितर हो जाता

है, जहां एक हाथी चलता फिरता पहाड़ अपने पैर तले बीसों शेरों को रौंद डालता, वहां शेर के डर के कारण उसकी यह दशा होती है।

दो भाइयों की शिक्षा प्रद कहानी विख्यात है, जिनको बराबर की सम्पत्ति मिली थी, परन्तु कुछ दिनों के बाद, उनमें से एक विल्कुल दरिद्र हो गया था, दूसरे ने अपनी सम्पत्ति दशगुना बढ़ा ली थी। इस पर लखपती भाई से किसी ने पूछा क्यों और कैसे यह दशा हुई? इस पर लखपती भाई ने उत्तर दिया कि मेरा भाई हमेशा जाओ, जाओ, कहा करता था। और तब मैं आओ आओ कहा करता था इसका तात्पर्य यह है कि वह अपने नौकरों से जाओ, अमुक काम कर लाओ कह दिया करता था और स्वयं गद्दी पर पड़ा रहता था। दूसरा परिश्रमी था वह स्वयं अपने हाथों से अपना काम करता था। जो अपनी शक्ति पर भरोसा करता था उसने अपनी सम्पत्ति बढ़ा ली, और जो अपने नौकरों को जाओ! जाओ!! आज्ञा किया करता था, वे उसकी आज्ञा से चल दिये उसकी आज्ञा जाओ जाओ लक्ष्मी ने भी स्वीकार कर ली और वह भी चलती बनीं। बस वह कङ्गाल होगया। राम कहता है:—आओ! आओ!! मेरी सफलता और प्रसन्नता के हिस्सेदार बनो। बस मेरे भाइयो! मित्रो! और देशवासियो! मनुष्य अपने भाग्य का आपही मालिक है। यदि जापानी लोग मुझे अपने विचार उनकी सेवा में प्रकट करने का अवसर दें तो मैं यह सिद्ध करूंगा कि, किस्से कहानियों तथा कल्पित कथाओं पर विश्वास कर अपने से भिन्न वस्तुओं पर भरोसा करने के लिये कोई भी सयौक्तिक कारण नहीं। गुलाम भी

स्वतन्त्र है इसलिये वह गुलाम हो सकता है। स्वतन्त्रता से ही हमारा अभ्युदय है स्वतन्त्रता से ही हमें यन्त्रणायें भुगतनी पड़ती है और स्वतन्त्रता के कारण ही हम गुलाम हो गये हैं। तब रोने कुढ़ने से क्या लाभ है! हम क्यों नहीं अपने को असली स्वतन्त्रता की सहायता से शारीरिक और समाजिक बन्धनों से मुक्त करें।
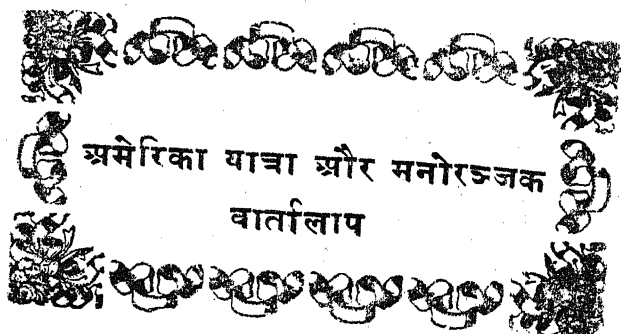
जापान में राम उसी धर्म को लाया है जो कई शताब्दियों पूर्व बुद्ध के अनुयायी यहां लाये थे, परन्तु उसी धर्म पर वर्त्तमान युग की आवश्यकता के अनुसार विचार करना चाहिये। पश्चिमी विज्ञान और दर्शन के प्रकाश से प्रकाशित करना चाहिये। मैं अपने धर्म के तत्वों को गोथे (Goethe) कवि के शब्दों में कहना चाहता हूं:---मैं तुम्हें मनुष्य का अलौकिक कर्त्तव्य बतलाता हूं मेरे पहले कोई सृष्टि नहीं थी, इसे मैंने ही रचा है। मैं वह हूं जिसने सूर्य को समुद्र से निकाला था। और मेरी ही इच्छा से चन्द्रमा अपनी रोज रोज बदलने वाली गति से चलने लगा।

एक बार कवि के इस कथन का अनुभव कीजिये आप ही आप उसी समय आपको स्वतन्त्रता प्राप्त होगी एक बार इस तत्व को पहचानो सदैव आपको सफलता प्राप्त होगी। एक बार इस तत्व को पहचानो तुम्हारी काल कोठरियां भी स्वर्गधाम में परिणत हो जावेंगी। कहते हैं स्वामी जी के इस व्याख्यान का जापान में बड़ा भारी प्रभाव हुआ था। वहां के अखबारों में इस व्याख्यान की बड़ी प्रशंसा हुई थी। जापान में स्वामीजी के और भी कई व्याख्यान हुए थे, जिनको जापानियों ने बड़े प्रेम और श्रद्धापूर्वक सुना था जापान में स्वामी जी के जो

व्याख्यान हुए थे, वे जापान के अख़बारों में उद्धृत नहीं हुये थे, परन्तु जापान के बाहर, अमेरिकादि के अख़बारों में भी उद्धृत होते रहे। परन्तु स्थानाभाव के कारण हम उन सब व्याख्यानों का यहां सारांश प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। परन्तु वस्तुतः जापानियों को जो उपर्युक्त उपदेश स्वामी जी ने किया था। वह प्रत्येक भारतवासियों के विचारने और मनन करने योग्य है। आज भारतवासियों की अवनति का कारण, उनमें स्वामी जी के बतलाये सफलता के साधनों का न होना ही नहीं है अरे! उन्नति उन्नति की चिल्लाहट मचानेवालो! अज्ञान के गड्ढे से निकल कर, राम बादशाह के इस ज्ञानामृत का पान तो करो, देखो जिस फल प्राप्ति के लिये तुम सिर पटक कर परेशान हो रहे हो उसमें तुम्हें सफलता प्राप्त होती है या नहीं। अरे! भाई!! झूठी मृगतृष्णाओं को छोड़ो देखो! राम के समस्त उपदेशों में से यदि तुमने स्वावलम्बन ही ग्रहण कर लिया तो जिस कार्य के लिये तुम लाख लाख चेष्टायें करके निराश होजाते हो, उसमें तुमको निरन्तर सफलता प्राप्त होगी। अरे! स्वावलम्बन न होने के कारण ही तो तुम आज अपनी भलाई बुराई के लिये दूसरों के द्वार पर भटक रहे हो भला कहीं कोई भिखारी भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है जिस राष्ट्र का मस्तिष्क इतना खोखला हो चुका है कि वह अपनी भलाई बुराई का विचार नहीं कर सकती भला वह राष्ट्र क्या जीवित रहने का दावा कर सकती है। जिस राष्ट्र की दशा, उस कुत्ते के समान हो जो अपने मालिक की रकाबी की ओर टकटकी लगाये बैठा रहता है कि वह कब खा चुके और मुझे झूठा एक टुकड़ा रकाबी में से मिले।

स्मरण रहे कुत्ते के समान विचार रखनेवाला राष्ट्र कभी जीवन संग्राम में ठहर नहीं सकता है। इस संसार में प्रभु की मंगलमय सृष्टि में वही जीवित रह सकता है जिसको अपने बाहु बल का भरोसा है। जिसको अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। जिस जाति के बच्चों का हृदय जाति प्रेम से शून्य है, जिस जाति के बच्चों में जाति अभिमान का लेश मात्र भी नहीं है। क्या वह जाति; अपने लिये जीवित जाति कह सकती है! देशभक्ति और जाति प्रेम से शून्य हृदय के मनुष्यों का यदि कोई राष्ट्र हो सकता है तो हम लकड़ियों के बहुत से ढेर को भी जहाज कह सकते हैं। जिस देश और जाति के बच्चे अपने मनुष्योचित अधिकारों और स्वत्वों को नहीं पहचानते, वे क्या इस जीवन द्वन्द्व में ठहर सकते हैं। तभी तो स्वामी जी कहते हैं कि आत्मस्वरूप को पहचानो! अरे वृद्ध भारत माता के बच्चो! आत्म स्वरूप के न पहचानने के कारण ही तुम्हारी यह अधोगति होरही है। जिस रोज तुम आत्मा का असली स्वरूप पहचान जाओगे उस दिन ही तुम सब बाधाओं से पार हो जाओगे। तुम्हारे मार्ग में कोई भी विरोधनी शक्ति नहीं रहेगी। आओ! सब विश्वासों पर जो आत्मविश्वास है उसका अवलम्बन करके देखें तो सही इस में कहां तक सत्यता है। हमारा तो यह अटल विश्वास है कि इस देश के पतन होने का कारण आत्मविश्वास का अभाव ही है। क्या मृतप्राय भारत के निवासी स्वामी जी के इस संदेश को कार्य में लाने को तैयार होंगे।

अमेरिका यात्रा और मनोरञ्जक वार्तालाप

जापान से स्वामी जी अमेरिका गये जापान में स्वामी जी के जो व्याख्यान होते थे उनकी अमेरिका में पहले से ही धूम मच चुकी थी। स्वामी जी सच्चे त्यागी और संन्यासी थे। उन्हें रुपये पैसे की कभी चिन्ता नहीं होती थी। वे प्रायः कहा करते थे कि राम बादशाह की सारी दुनियां है और सारी दुनिया का रामबादशाह है। वे प्रायः कहा करते थे:—

> बादशाह दुनिया के हैं मुहरे मेरी शतरंज के।
> दिल लगी की चाल है सब रङ्ग सुलह व जङ्ग के॥

वास्तव में राम का उपर्युक्त कथन सत्य ही था और उस का परीक्षण अमेरिका में हुआ। जब राम जापान से अमेरिका के लिये जहाज़ में बैठे तब उनके पास कुछ रुपया पैसा नहीं था। एक अमेरिकन अखबार का रिपोर्टर (संवाददाता) उसी जहाज़ में बैठा था। संवाददाता महाशय ने राम का भगवा वस्त्र देखकर उनको एक साधारण व्यक्ति समझा।

संवाददाता और राम का जहाज़ पर जो मनोरञ्जक वार्त्तालाप हुआ था उसका सारांश नीचे प्रकाशित किया जाता है।

संवाददाता—'आप कहां जाते हैं ?' स्वामीराम—'मैं अमेरिका जाता हूं'—संवाददाता—"क्या इसी लिवास में आप अमेरिका जा रहे हैं ?" स्वामीराम—"हां इसी लिवास में अमेरिका जा रहा हूं"—संवाददाता—" आप के पास कितना रुपया है ? राम—" राम अपने पास कुछ रुपया पैसा नहीं रखता" संवाददाता—"अच्छा आप वहां कहां ठहरेंगे ?"—स्वामीराम—मुझे कुछ मालूम नहीं मैं वहां कहां ठहरूंगा। इस पर संवाददाता ने झुंझला कर कहा—" तुम भी अजीब आदमी हो, अमेरिका जैसे देश को जा रहे हो वहां पर न तो ठहरने का प्रबन्ध किया है न अपने साथ कुछ रुपया पैसा ले चले हो वहां पर तुमको भूखे मरना होगा।" इस पर स्वामी जी खिलखिला कर हंस उठे और कहा " राम सारी दुनिया का है और सारी दुनिया उसकी है राम को अमेरिका में तो क्या कहीं भी भूखे मरने की नौबत नहीं आवेगी" राम के इस कथन पर संवाददाता की आंखें खुलीं और इस पर वह कहने लगा कि आप वही स्वामी राम तो नहीं हैं जिनके व्याख्यान मैं जापान के अखबारों में से अपने अखबारों में नकल करता रहा हूं। इस पर स्वामीराम ने कहा—" हां ! मैं वही राम हूं।" यह सुनते ही संवाददाता ने अमेरिका के अखबारों को राम के अमेरिका आने की ख़बर तार द्वारा भेज दी। कुछ दिन समुद्र यात्रा समाप्त करके राम बादशाह अमेरिका पहुंचे तो वहां के बन्दरगाह पर बहुत से आदमियों की गाड़ियां राम को लेजानेके लिये आईं और उनका खूब ठाटवाट

से स्वागत किया इस पर राम ने अमेरिकन अखबार के उस रिपोर्टर से, जो उनके साथ में था मुस्कराकर पूछा—"क्यों साहब क्या मुझको अब भी भूखा मरना पड़ेगा।" इस पर अमेरिकन अखबार का संवाददाता लज्जित हो गया।

अमेरिका में प्रभाव

स्वामी जी का अमेरिका में अधिक प्रभाव हुआ। अमेरिका वासी उनके व्याख्यानों को बड़े चाव से सुनते थे। अमेरिका में स्वामी जी के व्याख्यानों का जो प्रभाव हुआ था, उसका अनुमान केवल इतने से ही किया जा सकता है कि वहां पर अमेरिकनों के अनुरोध से उनको दिन में छः छः व्याख्यान देने पड़ते थे तिस पर भी अमेरिका के निवासियों की आध्यात्मिक ज्ञानरूपी पिपासा तृप्त नहीं होती थी। स्वामी राम ने अमेरिका के निवासियों को अपने आध्यात्मिक ज्ञान का ही परिचय नहीं दिया था किन्तु अपने शारीरिक बल से भी उनको चकित और स्तम्भित कर दिया था। अमेरिका में उन्होंने अपने शारीरिक बल का असाधारण परिचय दिया था। वे वहां के सिपाहियों के साथ तीन मील तक दौड़ जाते थे और उनसे आगे निकल जाते थे। नदी में बीस मील तक तैरते रहते थे। सच बात तो यह है कि जैसा वह कहते थे वैसा करके दिखलाते थे। यही कारण है कि उनका प्रभाव विशेष होता था 'यथा वाणी तथा पाणी' जब तक कोई उपदेशक नहीं होता है तब तक उसका पूरा प्रभाव नहीं होता है। स्वामी राम में यह विशेषता थी कि वे केवल वाक्यवीर नहीं थे कर्म-वीर भी थे उनका व्यवहारिक जीवन था। तब ही तो पोर्टलैंड

राम सोसायटी के सभापति और वहां के जज मिस्टर वेन्सटर ने कहा था—"जब प्रथम वार ही मेरी राम से भेंट हुई और बात चीत तक भी नहीं की थी लेकिन उनके दर्शन करते ही एक तरह का प्रेम हो गया। जैसा और किसी को देखने से आज तक नहीं हुआ है।" आगे मिस्टर वेन्सटर कहते हैं—"इस प्रेम अर्थात् राम के दर्शन करने से जो प्रेम प्राप्त हुआ है उसका फल सदैव रहेगा।"

अमेरिकन लोग स्वामी राम से बड़ा ही प्रेम करते थे। अमेरिका की एक मेम मिसेज़ वेलमेन की स्वामी जी पर अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा हो गई थी। वह वृद्धा होने पर लम्बी यात्रा की शक्ति न होने तथा इस देश की भाषा से अनभिज्ञ होने पर भी भारतवर्ष में राम के दर्शनों के लिये आई, और बहुत दिनों तक यहां रही। राम के पीछे पीछे जङ्गलों और पहाड़ों में फिरती रही और राम के प्रेमियों से मिली। अमेरिका लौटने के पहले वह लाहौर, अमृतसर और राम की जन्मभूमि मराली वाला में भी गई थी। और ऐमनाबाद रेलवे स्टेशन से राम की जन्मभूमि मराली वाला में भी रेलवे स्टेशन से लेकर राम की जन्मभूमि तक वह जङ्गलों और खेतों को बड़े प्रेम और चाव से देखती जाती थी, बार बार कहती थी कि राम इस जङ्गल में होकर कितनी बार निकले होंगे, जिस घर में राम का जन्म हुआ था, जिस पाठाशाला में राम की प्रारम्भिक शिक्षा हुई थी तथा राम के खेलने कूदने बैठने के स्थानों को बड़ी कौतुहल जनक दृष्टि से देखती रही। राम के बच्चों, राम की धर्मपत्नी तथा अन्य घर वालों को वह बड़े प्रेम और आदर की दृष्टि से देखती रही। न केवल आप ही

प्रतिक्षण—राम के प्यारे शब्द "ओ३म्" का जप करती थी किन्तु उसके पास जो होता था, उसको भी ओ३म् शब्द का जप कराती थी। केवल इस घटना से ज्ञात होता है कि अमेरिकन लोग स्वामी रामतीर्थ को बहुत चाहते थे।

यहां पर यह प्रश्न स्वभावतः ही होता है कि राम ने अमेरिका, जापानादि में जाकर भारतवर्ष के लिये क्या किया? राम ने अमेरिका तथा जापान में भारतवर्ष की तरुण पीढ़ी के लिये जो कार्य किया है वह सदैव भारतवासियों के हृदय पटल पर अङ्कित रहेगा। राम ने जापान, अमेरिकादि में ऋषि महर्षियों के सन्देश को पहुंचाने के अतिरिक्त वहां विद्यार्थियों के लिये विशेष सुविधा कर दी। जापान और अमेरिका में भारतवर्षीय विद्यार्थियों के प्रति बुरा भाव न होने पावे इसका उन्होंने प्रबल प्रयत्न किया था और उनको अपने इस प्रयत्न में सफलता भी प्राप्त हुई थी।

"विद्या जहां कहीं से मिले वहीं से प्राप्त करनी चाहिये" मनु जी के इस कथन के तत्त्व को राम भाली भांति जानते थे और उन्होंने इस तत्व के अनुसार ही अमेरिका में रहते समय वहां की अगणित पुस्तकें पढ़ डाली थीं। वे अमेरिका में तीन वर्ष रहे थे। वहां पर उनके विविध स्थानों में अगणित व्याख्यान हुये थे। वहां की सेन्टलुईस एक्जिविशन की धार्मिक सभा (रिलीजस लीग) में उनका इतना प्रभाव हुआ था कि वहां के समाचार पत्रों ने लिखा था कि सारी सभा में वह स्थान बड़ा सुन्दर था, जहां स्वामी राम उपस्थित थे अमेरिका की ग्रेट पेसिफ़क रेलवे रोड कम्पनी (Great Pacific Railway road Company) के मैनेजर स्वामी राम की मुसकराहट पर

मोहित होगये थे। वास्तव में स्वामी राम की मुस्कराहट उत्साह हीन व्यक्तियेों के हृदय में सञ्जीवनी शक्ति का सञ्चार कर देती थी वहां के कई गिरजों में उनके व्याख्यान हुये थे। उनके समस्त व्याख्यानेों का सारांश इस छोटी सी पुस्तिका में लिखा जाना असम्भव है परन्तु हिन्दी प्रेमियेों की इच्छा हुई तो हम प्रथक क्रमबद्ध उनके व्याख्यानेों का सारांश प्रकाशित करने की चेष्टा करेंगे यहां पर हम उनके दो तीन व्याख्यानेों का सारांश प्रकाशित करते हैं। जिससे पाठकेों को ज्ञात होगा कि उनके वहां पर कैसे व्याख्यान हुये थे।

सफलता की कुञ्जी

जापान में स्वामीजी ने The Secret of Suecess नामक जो व्याख्यान दिया था, जिसका सारांश "सफलता के रहस्य" शीर्षक पीछे प्रकाशित कर चुके हैं, वैसे ही शीर्षक का व्याख्यान उन्होंने सेनफ्रांन्सिसको में दिया था जिसका सारांश यह है। "तीन लड़कों को पांच सेंट दिये, लड़कों के मालिक ने रुपये को लड़कों से आपस में बराबर बांटने के लिये कह दिया था। लड़कों ने उस रुपये से कुछ चीज़ खरीदने की सोची। लड़कों में से एक अङ्गरेज़ था, एक हिन्दू था और एक एक पारस का रहने वाला मुसलमान था। तीनों में से कोई दूसरे की भाषा अच्छी तरह से समझने वाला न था। बस इस कारण उनको यह निश्चय करने में कुछ कठिनता हुई कि क्या खरीदना चाहिये ? तीनों अपनी भाषा में तरबूज खरीदने के लिये झगड़ा करने लगे तीनों को क्या खरीदना चाहिये इसका निर्णय नहीं कर सके। प्रत्येक अपनी इच्छानुसार पदार्थ खरी-

दने के लिये अनुरोध करने लगा। दूसरे के इच्छित पदार्थ की परवाह नहीं की। इस पर उनमें अपास में खूब झगड़ा होने लगा, वे आपस में बाज़ार के बीच लड़ने और झगड़ने लगे। इस बीच में दैवयोग से एक ऐसा आदमी आगया जो अंगरेज़ी हिन्दुस्तानी और फ़ारसी तीनों भाषाओं को अच्छी तरह समझता था। वह आदमी इन लड़कों के झगड़े को देख कर हंसने लगा। उसने कहाः—"लाओ, मैं तुम्हारे झगड़े को तय किये देता हूं। तीनों लड़कों ने भी उससे अपना झगड़ा शान्त करना और उसके न्याय के सामने सिर झुकाना स्वीकार कर लिया। अद्मी ने पांच सेन्ट * लड़कों से ले लिया और उन से एक स्थान पर ठहरने के लिये कहा। इसके पीछे वह स्वयं फल बेचने वाले की दूकान पर गया और पांच सेन्ट का एक तरबूज ले आया। उसने उस तरबूज़े को तीनों लड़कों से छिपा कर अपने पास रक्खा और उनमें से एक एक को बारी बारी से बुलाने लगा। उसने पहले अंगरेज़ लड़के को अपने पास आने को कहा और साथ ही उससे यह कह दिया कि उसके साथियों को यह पता न लगे कि उसको किस लिये बुलाया हैं। लड़के को बुला कर उसने तरबूज़े के बराबर तीन भाग कर लिये और एक भाग लड़के को देकर उसने पूछाः-"क्या तुम यही चीज़ नहीं चाहते थे?" इस पर लड़का बड़ा प्रसन्न हुआ उसने कृतज्ञता और धन्यवाद सहित तरबूजे का टुकड़ा स्वीकार कर लिया और मारे खुशी के यह कहता हुआ उछलने कूदने लगा कि यही तो चीज़ है, जो मैं चाहता था। तब उसने

---

*एक अमेरिकन सिक्का।

ईरानी लड़के को बुलाया और उससे पूछा कि "क्या तू यही चाहता था ?" इस पर वह लड़का बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा। "अहा यही तो मैं चाहता था, यही तो मैं चाहता था।" तब उसने हिन्दू लड़के को बुलाया और उससे यह पूंछ कर कि क्या तुम यही चाहते थे, तरबूज़े का तीसरा भाग भी दे दिया। बस इस पर हिन्दू लड़का भी सन्तुष्ट हो गया और कहने लगा कि:—'यही तो मैं चाहता था, यही तो मेरा तरबूज है"।

किस कारण से यह झगड़ा हुआ ? किस कारण से लड़कों के बीच में ऐसे कुविचार भाव फैल गये ? केवल अपनी अपनी भाषा के नामों का भेद था। नामों को हटा दो, तुम देखोगे कि बात कुछ नहीं है। एक पदार्थ के कई नाम हैं तर-बूज़ Water melons और हिन्दवान्ना एक ही चीज़ के नाम हैं। उनका एक ही उद्देश्य है। यह हो सकता है कि जो तरबूज़ ईरान में होते हैं उन तरबूज़ों में इङ्गलैण्ड के तरबूज़ों से कुछ भेद होता है . जो तरबूज़ हिन्दुस्तान में उगता है उस तरबूज़ का इङ्गलैण्ड के तरबूज़ से कुछ भेद होता है। परन्तु असल में फल एक ही हैं।। इस तरह के थोड़े से भेद भाव दूर किये जा सकते हैं।

बस इसी भांति राम को धर्म सम्बन्धी मतभेद धर्म संबंधी विचार और धर्म सम्बन्धी झगड़ों पर विस्मय होता है। क्रिश्चियन लोग यहूदियों के साथ लड़ रहे हैं, यहूदी मुसलमानों से झगड़ रहे हैं। मुसलमान ब्राह्मणों से लड़ रहे हैं। उसी भांति ब्राह्मण बौद्धों से और बौद्ध ब्राह्मणों से पेश आते हैं। इन सब झगड़ों को देख कर अत्यन्त विस्मय होता है।

इन सब झगड़ों का कारण विशेषतः नाम ही है। नामों की ओट हटा दो, नामों के पर्दाओं को दूर कर दो, तब उनको देखो, उनमें कुछ भी भेद दिखलाई नहीं पड़ेगा।

राम प्रायः वेदान्त शब्द का व्यवहार किया करता है। बस इसी से कुछ लोगों को राम की कुछ बातें सुनने से द्वेष हो जाता है। एक आदमी आता है और बुद्ध के नाम पर कुछ उपदेश करता है, बस बहुत से आदमी उसका उपदेश सुनना नहीं चाहते हैं क्योंकि वह एक ऐसा नाम लेता है, जो उनके कानों को बुरा मालूम पड़ता है अजी कुछ और भी विचारो। बीसवीं शताब्दी में नाम से ऊपर भी उठने का समय है। राम अथवा और कोई जो कुछ तुम से कहता हो, उसको उसके गुणों पर ग्रहण करो। नामों से ही मत घबड़ाओ नामों से ही गुमराह मत हो। प्रत्येक पदार्थ की परीक्षा कर लो और देखो कि वह काम करता है या नहीं। किसी धर्म को इसलिये ग्रहण मत करो कि वह सब से पुराना है। पुराना होना ही सच्चाई का कोई सबूत नहीं है। किसी समय पुराने मकान गिराने पड़ते हैं और पुराने कपड़े बदले जाते हैं। नई स्थापना को भी युक्ति और प्रमाण की कसौटी पर कस कर देखो, वह ऐसा अच्छा तो नहीं है जैसे एक गुलाब चमकती हुई ओस से सुशोभित रहता है। उस धर्म को भी ग्रहण मत करो क्योंकि सब में नया है। किसी धर्म को इसलिये भी ग्रहण मत करो कि उसको बहुत से लोग मानने वाले हैं। क्योंकि आदमियों की बहुत सी संख्या शैतान के मत में, अज्ञानता के मत में विश्वास करती है। एक समय था कि बहुत से आदमी गुलामी में विश्वास करते थे परन्तु वे इस बात

का कोई प्रमाण नहीं दे सके कि दासता (गुलामी) भी कोई संस्था है। इस विश्वास पर भी किसी धर्म को ग्रहण मत करो कि उसके मानने वाले बहुत थोड़े हैं किसी समय बहुत थोड़े आदमी भी जो किसी धर्म को ग्रहण कर लेते हैं! अन्धकार में पड़े रहते हैं, गुमराह हो जाते हैं । किसी ऐसे धर्म को भी ग्रहण मत करो, जो किसी संन्यासी से जिसने सब कुछ त्याग दिया है ऐसे त्यागी से आता हो क्योंकि हम देखते हैं कि ऐसे मनुष्य जिन्होंने सब कुछ त्याग कर दिया है वे कुछ भी नहीं जानते वे बिल्कुल मस्त (खब्ती) होते हैं । उस धर्म को भी ग्रहण मत करो जो राजकुमार और राजाओं से आता हो। क्योंकि प्रायः राजा लोग आध्यात्मिक ज्ञान से कोरे होते हैं उस धर्म को भी ग्रहण मत करो जो किसी ऐसे आदमी से आता हो, जिसका चरित्र अत्युच्च हो क्योंकि प्रायः अच्छे चरित्र के पुरुष भी सच्चाई को प्राप्त करने में सफल नहीं हुये हैं। एक मनुष्य की पाचनशक्ति स्वभावतः ही बलवान होती है, परन्तु वह पाचन की प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। यहां पर एक चित्रकार है, जो अपने चित्रकारी के कार्य से आपको आकर्षित और मोहित कर लेता है। तिस पर भी चित्रकार संसार में सब से बुरी शक्ल का होता है। संसार में ऐसे बहुत से मनुष्य हुये हैं जो कुरूप थे, तिस पर भी उन्होंने सच्चाई का प्रचार किया है। सुकरात ऐसे ही मनुष्यों में से था। सर फ्रान्सिस बेकन ऐसे ही मनुष्यों में से था जिसके न तो मानसिक आचरण बहुत अच्छे थे न जिसका चरित्र बहुत अच्छा था, पर वह संसार को दर्शन शास्त्र की अपूर्व पुस्तक तर्कशास्त्र दे गया। विश्वास भी कोई धर्म नहीं है, क्योंकि

वह किसी विख्यात मनुष्य से आता है। सर आईज़क न्यूटन एक बहुत मशहूर आदमी था, तथापि उसकी प्रकाश संबन्धी कल्पना (थ्योरी) ग़लत है। किसी पदार्थ अथवा धर्म को उसकी विशेषता के अनुसार ग्रहण करो। उसकी स्वयं परीक्षा कर देखो। अपनी स्वतन्त्रता बुद्ध, ईसामसीह, मुहम्मद और कृष्ण को मत बेचो। यदि बुद्ध ने आपको यह मार्ग बतलाया है, क्राइस्ट ने यह मार्ग सिखलाया है अथवा मुहम्मद ने किसी दूसरे मार्ग की बात कही है। तो यह उनके लिये अच्छा था, वे दूसरे युगों में रहे थे। उन्होंने अपनी समस्याओं की पूर्ति कर ली थी। उन्होंने उसका निबटारा अपनी बुद्धि से कर लिया था। वह उनके लिये अच्छी बात थी, लेकिन आप वर्त्तमान युग में रह रहे हो आप को अपने लिये स्वयं सब बातों की जांच करनी होगी, उनमें गुण दोष की विवेचना करनी होगी उनकी परीक्षा करनी होगी। स्वतन्त्र हो, अपनी आंखों से स्वतन्त्रता पूर्वक प्रत्येक पदार्थ को देखो। यदि आप के पूर्वज किसी विशेष धर्म में विश्वास करते थे, तो उसमें विश्वास करना शायद उनके लिये बहुत अच्छा था। लेकिन अब आप का निस्तार (मुक्ति) आप के हाथ है आप की मुक्ति का काम आप के पूर्वजों के हाथ नहीं है। वे किसी विशेष धर्म में विश्वास करते थे जो शायद उनकी रक्षा कर सकता था। अथवा नहीं कर सकता था। परन्तु आप को अपने छुटकारे के लिये आप काम करना होगा। जो कुछ आप के सामने आवे उसकी परीक्षा करो, स्वयं उसकी परीक्षा करो पर अपनी स्वतन्त्रता नष्ट मत करो। आपके पूर्वजों को शायद एक विशेष धर्म का ही परिचय मिला हो, आपको सब प्रकार की

सच्चाई सब प्रकार के धर्म, सब प्रकार के दर्शन सब प्रकार के विज्ञानों का परिचय मिल चुका है। यदि आपके पूर्वजों का धर्म इस युक्ति के कारण ही आपका धर्म है कि वह आपके सामने उपस्थित किया गया था। तो बौद्ध धर्म भी आपका धर्म इस लिये है कि वह आपके सामने उपस्थित किया गया है। वेदान्त भी इस युक्ति के कारण, वह आपके सामने उपस्थित किया गया है, आपका धर्म है।

सच्चाई किसी की ज़ायदाद नहीं है। सच्चाई ईसा मसीह की सम्पत्ति नहीं है हमें उसका ईसामसीह के नाम पर प्रचार नहीं करना चाहिये। सच्चाई बुद्ध की भी सम्पत्ति नहीं है, हमें उसका बुद्ध के नाम पर प्रचार नहीं करना चाहिये। वह मुहम्मद अथवा कृष्ण की भी सम्पत्ति नहीं है। वह प्रत्येक की सम्पत्ति है। यदि कोई सूर्य की किरणों में ताप लेता है, तो आप भी धूप में बैठ सकते हो। यदि कोई मनुष्य नदी का स्वच्छ जल पीता है तो आप भी उस स्वच्छ जल में से पी सकते हैं। आपकी चित्त वृत्ति प्रत्येक धर्म की ओर ऐसी ही होनी चाहिये कोई मनुष्य अपने पड़ोसी के सांसारिक पदार्थों को हरण करने में अपने हृदय से संकोच नहीं करता है, पर यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जब कोई हमारा पड़ोसी संसार के समस्त पदार्थों से बढ़कर आध्यात्मिक अथवा धार्मिक कोष खुशी से देना चाहता है तो हम उसको हर्ष पूर्वक स्वीकार करने की अपेक्षा उससे लड़ने को तैयार हो जाते हैं। राम आपको वेदान्त की शिक्षा इस विचार से नहीं देता है कि आप अपना नाम वेदान्ती रख लें, नहीं आप इस (वेदान्त) को ग्रहण करें, इसको अपना बनावें

इसको खीष्ट धर्म कहें नामों से हमको कुछ सरोकार नहीं है। राम आपको ऐसे धर्म के लिये नहीं कहता है जो बाइबिल में मिलता है जो बहुत पुराने ग्रन्थों में मिलता है जो नवीन दार्शनिक और वैज्ञानिक ग्रन्थों में मिलता है, पर नहीं राम आप से ऐसे धर्म के लिये कहता है, जो गलियों में मिलता है, जो वृक्षों के पत्तों पर अङ्कित है, जो पानी के झरनों में कलकल करता है। जो हवा में फुस फुस करता है। जो आपकी रगों और हड्डियों में समा रहा है। वह धर्म जो आपको व्यवहार और हृदय से सावधान रखता है वह धर्म जिसका प्रयोग किसी ख़ास गिरजे में जाने से नहीं होता है। वह धर्म जिसके सहारे जीवन निर्भर है और जो नित्य प्रति व्यवहार में लाया जाता है। आपके चूल्हे में, आपके भोजन गृह में, प्रत्येक स्थान में आप जिसमें रहते हो, वह धर्म है। हम इसको वेदान्त नहीं कहते हैं, हम इस धर्म का कोई दूसरा नाम भी रख सकते हैं। सत्य का नाम ही वेदान्त है। सच्चाई आपकी है। राम की अपेक्षा सत्य आपका है। सत्य सब का है और सब पदार्थ सत्य के हैं।

अब हमको देखना चाहिये कि इस जीवन में वेदान्त, कैसे हमारे मार्ग को सुन्दर और हमारे कार्यों को सुखप्रद बनाता है। आज हम व्यवहारिक वेदान्त जो दूसरे शब्दों में सफलता की कुञ्जी है; उसके सम्बन्ध में कुछ कहेंगे। प्रत्येक विज्ञान से सम्पर्क रखने वाली कला होती है और आज हम उस वेदान्त अर्थात् व्यवहारिक वेदान्त के विषय में कहेंगे जो विज्ञान की अपेक्षा कला है।

कुछ व्यक्तियों का कथन है कि वेदान्त निराशा की शिक्षा

देता है। यह सुस्ती, आलस्य सिखलाता है ऐसे विचार के लोगों से राम की प्रार्थना है कि इस युक्ति को अपने पास ही रहने दें, अपनी बुद्धि दूसरों को न बेच, यह देखें कि वेदान्त की शिक्षा से शक्ति, बल और यश अथवा और कोई पदार्थ भी प्राप्त होता है या नहीं।" इसके आगे स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में अमेरिकनों को वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने का उपयुक्त पात्र बताते हुए सफलता के सात साधन उद्योग, स्वार्थत्याग, प्रेम, प्रसन्नता, निर्भीकता, आत्मविश्वास, शुद्धता आदि की व्याख्या की है! ऊपर हम स्वामी जी का जापान में दिया हुआ व्याख्यान "सफलता का रहस्य" प्रकाशित कर चुके हैं। इस व्याख्यान में भी स्वामी जी ने सातों साधनों की व्याख्या बड़ी विलक्षण और अनोखी की है। कहीं कहीं जापान वाले व्याख्यान से विचार मिलते जुलते हैं, पर विशेषतः इसमें नूतन विचारों का ही समावेश किया गया है। परन्तु दोनों व्याख्यानों का आशय एक ही है इस कारण से और स्थान के अभाव के कारण भी हम इस व्याख्यान को यहां उद्धृत करने में असमर्थ हैं।

आंतरिक आनन्द

या

[सुख की खोज]

राम विलायत वालों को अन्य जातियों के विजय करने पर दूषित नहीं ठहराता। जाति की आत्मिक उन्नति में यह ऐसी एक श्रेणी होती है जो कि एक समय आवश्यक प्रतीत होती है। भारत को भी इस श्रेणी को पार करना पड़ा था

परंतु एक बहुत प्राचीन जाति होने के कारण उसने संसार की सम्पदा को तोल कर अपूर्ण एवं निस्सार पाया और यही अनुभव इन जातियों का होगा जो आज अन्य जातियों के विजय करने का प्रयत्न कर रही हैं। यदि भली भांति विचार कर देखा जावे तो इन सब प्रयत्नों का उद्देश्य सुख की उत्कट लालसा है।

आज यह विचार करना है कि सुख का कौन सा स्थान है, क्या सुख राज गृह में रहता है या झोंपड़ी में, स्त्री के सौन्दर्य में अथवा कांचन में ? बताओ सुख का वास्तविक स्थान कहां है ? सुख-कथा बड़ी ही निराली है। जैसे समय की चलाय मान गति है, वैसे ही सुख भी चलता रहता है। अब हमसु ख की चलायमान गति का वर्णन करते हैं।

जीवन प्रभात में बालक के लिये प्यारी माता की गोद हो सच्चे सुख का स्थान है। इसके सम्मुख संसार के अच्छे २ पदार्थ निरर्थक और तुच्छ हैं। परंतु एक वर्ष व्यतीत होते हो बालक के सुख का स्थान बदलता है। प्यारी माता से भी वह कभी २ अब खिलौनों के लिये झगड़ता और मचलता है जब बालक ६ या ७ वर्ष का होता है तो उसको पुस्तकों से, विशेष कर कहानी की पुस्तकों से प्रेम होता है। जब कालेज़ में पढ़ने जाता है तो विज्ञान अथवा शास्त्र-ज्ञान की ओर झुकता है। जब विश्वविद्यालय से निकल कर जीवन संसार में प्रवेश करता है तो कोई नौकरी ढूढ़ता है फिर धन कमा कर कुबेर होने के विचारों में उसका एकमात्र "आनन्द" निवास करता है। थोड़े काल के व्यतीत होते ही उसको स्त्री की इच्छा होने लगती है।

विवाह होते ही धन क्या सर्वस्व ही स्त्री पर निछावर करने के लिये उद्यत हो जाता है। थोड़ा काल और बीतता है और अब उसके आनन्द का लक्ष्य पुत्र कामना हो जाती है। ईश्वर से पुत्र प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है; देवी देवताओं को मनाता है और वैद्य हकीमों के पास दौड़ता है।

अब हमको यह विचार करना है कि क्या वास्तव में आनन्द माता की गोद में, खिलौनों में, कांचन में, कामिनी में, पुत्र में, अथवा अन्य साँसारिक वस्तु में निवास करता है। इस विषय में कुछ कहने के पूर्व हम घूमते हुये आनन्द की तुलना चलायमान सूर्य प्रकाश से करेंगे। सूर्य प्रकाश भी एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है। अभी अमेरिका में प्रकाश है तो थोड़ी देर में जापान में होगा। फिर थोड़ी देर ही में और कहीं होगा। परंतु यह भिन्न २ स्थान प्रकाश के उत्पत्ति स्थान नहीं है प्रकाश का तो उदय और ही कहीं से होता है। इसी प्रकार से आनन्द का प्रकाश इन सब वस्तुओं में अवश्य है परंतु ये वस्तु आनन्द की जन्म दात्री नहीं हैं। पुत्र मनोहर और आनन्द-प्रद अवश्य है परंतु केवल इसी लिये कि वह निज के प्रकाश से प्रकाशित है यह प्रकाश बालक में स्वाभाविक नहीं है क्योंकि यदि यह ही होता तो बालक सदा सुख का स्थान बना रहता, परंतु वास्तव में स्नेह भी बालक की बढ़ती हुई आयु के साथ साथ घटता चला जाता है।

यहां हम आनन्द श्रोत के कुछ निकट चले आते हैं। बालक पुत्र होने से स्नेह पात्र नहीं किन्तु आत्मा के सम्बन्ध से प्यारा है। इसी प्रकार अपनी हित कामना के लिये ही धन

प्यारा है धन धन के लिये प्यारा नहीं, राम ने स्वयं एक अद्भुत घटना का आलोचन किया है। एक समय की बात है कि गंगा में एक बार बड़ा बहाव आगया था। निकट वर्ती एक वृक्ष पर कुछ बंदर और एक बंदरिया अपने बच्चों के साथ बैठी थी। जल बढ़ता चला गया यहां तक कि वह बंदरों के स्थान तक पहुंच गया। बंदरिया उछल कर वृक्ष की चोटी तक पहुंच गई परंतु पानी वहां भी पहुंचा। सब बच्चे अपनी माता की छाती से लगे हुए थे। पानी बंदरिया के पैर तक पहुंच चुका था। बंदरिया ने एक बच्चे का लेकर अपने नीचे रख लिया परंतु जब पानी का और बढ़ते देखा ता दूसरे बच्चे का भी नीचे रख कर बैठ गई। यह सब बंदरिया ने क्यों किया? केवल अपने का बचाने के लिये, और अपनी प्राण-रक्षा के लिये उसने उन बच्चों का कुछ भी विचार न किया। जिनसे वह इतना प्यार रखती है कि मरने पर भी छाती से लगाये २ फिरती है।

अतएव यह निर्विवाद सिद्ध है कि आनन्द का निवास स्थान अपने भीतर ही है। परंतु क्या वह पैर में है? नहीं क्योंकि यदि ऐसा होता ता पैर सब से अधिक स्नेह पात्र होते परंतु हाथ इनसे कहीं अधिक प्यारे हैं। परंतु हाथ से अधिक ता नेत्र और नेत्र से अधिक प्राण प्यारे हैं। कुछ भी हो, यह स्थूल शरीर किसी प्रकार से आनन्द का श्रोत नहीं है। सम्भव है मस्तिष्क अथवा बुद्धि ही आनन्द का घर हो। परंतु मनुष्य बुद्धि हीन, पागल होकर भी जीना चाहते हैं। अतएव शायद प्राणों में ही सुख निवास करता हो। किंतु यह भी ठीक नहीं क्योंकि राम ने एक नवयुवक को अत्यन्त तीव्र वेदना से दुखी

होकर अंत समय में यह कहते हुए सुना है कि "हाय! यह प्राण कब निकलेंगे !!! इस जीवन का कब अंत होगा !!!"

अतएव यहां यह पता चलता है कि कोई वस्तु ऐसी है जो प्राण से भी अधिक प्यारी है और वही वस्तु आनन्द की कुंजी है। बुद्धि नेत्र से अधिक और प्राण बुद्धि एवं नेत्र से अधिक क्यों प्यारे हैं? केवल इसी लिये कि प्राण नेत्र से अधिक आत्मा के निकट हैं। कोई भी वस्तु क्यों न हो जिसमें आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध होगा वही प्यारी लगेगी यदि आनन्द आत्मा में ही विराजमान है तब यह कितनी बड़ी मूर्खता है कि हम उसकी खोज सांसारिक वस्तुओं में करते फिरते हैं।

भारत में एक प्रेम गाथा प्रचलित है। एक प्रेमी ने अपनी नायिका के प्रेम की शीतल अग्नि में अपने को भस्म कर दिया था। वहां के राजा ने उसको एक दिन बुलाकर उसके सम्मुख उसकी प्रेमिका तथा अन्य अति सुन्दर स्त्रियों को खड़ा कर उनमें सब से अधिक सुन्दर स्त्री को पसंद करने के लिये कहा। परंतु उस मनुष्य ने अपनी प्रेमिका ही को पसंद किया और राजा से बोला, "राजन्! मेरी प्रेमिका आपकी दृष्टि में तुच्छ हो परंतु मेरे लिये तो यह संसार की सब वस्तुओं से अधिक सौंदर्य शालिनी है।" यथार्थ में मनुष्य स्वयं ही किसी वस्तु को अपनी दृष्टि में चढ़ाता अथवा गिराता है।

राम को एक छोटे से बालक का हाल मालूम है। बालक ने अपनी परछांई देखकर और उसको एक अद्भुत वस्तु विचार कर उसके सिर को पकड़ना चाहा, परंतु बारम्बार प्रयत्न करने पर जब न पकड़ सका तो रोने लगा। माता ने यह देख कर

बालक को उसका ही सिर पकड़ा दिया और परछांई का सिर भी पकड़ गया। सारांश यह है कि स्वर्ग अथवा नर्क सब तुम्हीं में है। मनुष्य, प्रकृति एवं जगत का कर्त्ता तुम्हारे भीतर है। संसार के मनुष्यो! सुनो!! यह एक ऐसी शिक्षा है जिस की घोषणा सब जगह करनी चाहिये। यदि किसी वस्तु को पाना चाहते हो तो अपने ही सिर को पकड़ो। अपने भीतर ही देखो तब तुम पाओगे कि इन तारागणों का निर्माण तुमने ही किया है। यह सब चीजें तुम्हारे ही स्वरूप की प्रतिबिम्ब हैं।

एक बड़ी ही रोचक कहानी भारत में उस स्त्री के सम्बन्ध में कही जाती है जिसकी सुई खो गई थी, स्त्री निर्धन होने के कारण दिये के द्वारा प्रकाश न कर सकी अतएव अपने घर में सुई की खोज करने में असमर्थ थी। वह गली में जाकर जहां रोशनी थी अपनी सुई जो घर में खो गई थी देखने लगी। बस यही हाल मनुष्यों का है कि वह ज्ञान दीपक न होने से अपने आन्तरिक आनन्द को बाह्य को जगत की वस्तुओं में देखते फिरते हैं।

——:o:——

अमेकिनों से अपील

यों तो स्वामी रामतीर्थ जी के अमेरिका में अगणित व्याख्यान हुए थे। पर सब से बढ़कर उनका व्याख्यान "An Appeal to Americans" अर्थात् अमेरिकनों से अपील हुआ था। यह व्याख्यान जनवरी २८, सन् १९०३ को वहां के सेनफ्रान्सिसको के ग्लोडिनगेट में हुआ था। नहीं जानते कि जिन्होंने राम के मुख से यह व्याख्यान सुना होगा, उनकी क्या दशा हुई होगी? पर हमने तो जितने स्वामीराम के व्याख्यान सुने उनमें से सब से अधिक प्रभावोत्पादक प्रतीत हुआ है। चाहे जैसा पाषाण हृदय क्यों न हो पर स्वामीराम के इस व्याख्यान को पढ़कर उसका कलेजा पसीज जायगा। भारतवर्ष की वर्त्तमान परिस्थिति पर उसकी आंखों में से आंसू आये बिना नहीं रहेंगे। अङ्गरेज़ी में छपे हुये इस व्याख्यान के पचास पृष्ठ हैं, यदि इस व्याख्यान का पूरा अनुवाद किया जाय तो हिन्दी में दुगना हो जायगा। फिर स्वामी जी के भावों को वैसो ही प्रभावोत्पादक भाषा में प्रकाशित करना कठिन है तिस पर भी हम पाठकों के अवलोकनार्थ जहां तहां से इस व्याख्यान के मुख्य मुख्य अंश उद्धृत करते हैं।

इस व्याख्यान के प्रथम अंश में स्वामी जी ने भारतवर्ष का पूर्व समय में जो वैभव था, उसने जो गौरव प्राप्त किया था, अन्य देशों ने उससे जो जो शिक्षायें प्राप्त की थीं, उन सब का वर्णन किया है, उन्होंने अलङ्कारिक और मार्मिक भाषा द्वारा यह वर्णन किया था कि एक समय भारतवर्ष सब देशों का शिरोमणि था आज वह पद-दलित है। यूनान, अमेरिका इङ्गलैण्ड जर्मनी आदि सभ्यताभिमानी देशों के दार्शनिक विद्वानों ने उससे शिक्षायें ग्रहण की थीं। भारतवर्ष केवल ज्वलन्त आदर्श और उच्च विचारों की ही भूमि नहीं है। वह कविता और दर्शन शास्त्र का ही स्थान नहीं है, पर वह शारीरिक बल और शक्ति में भी कम नहीं है। आप लोगों को शायद शारीरिक बल और शक्ति इन शब्दों को सुनकर आश्चर्य होगा। पर यह तो कहो कि इन दिनों में भी वे कौन से व्यक्ति हैं जो वृटिश गवनमेन्ट को सहायता पूरी देते हैं और उसके रक्षक बने हुये हैं वे लोग भारतवर्ष के सिक्ख, गोरखा मरहट्टा और राजपूत हैं। वे भारतवर्ष के सिपाही हैं, जिन्होंने समस्त अवसरों पर अंगरेज़ सरकार के निमित्त युद्धों में विजय प्राप्त की है। राम आप लोगों से उस भारतवर्ष की बात कह रहा है, जो एक समय सब से अधिक धनाढ्य देश था। अनेक जातियों का केवल भारतवर्ष के कारण ही अभ्युदय हुआ है। कोलम्बस को अपने वाञ्छित भारतवर्ष के ढूंढने में ही अमेरिका का पता लगा। अमेरीका का नाम ही उस समय भारतवर्ष रक्खा गया था। राम आप से उस देश की बात कहता है जो एक समय संसार के समस्त देशों का शिरोमणि था। वह संसार में अपने हिमालय पहाड़, सुन्दर

बने जङ्गल और उपजाऊ खेतों के कारण उच्च और पवित्र भूमि थी। राम का यह तात्पर्य नहीं है कि वह (भारतवर्ष) केवल अपने शारीरिक बल के कारण संसार का मस्तिष्क था नहीं उस समय भारतवर्ष नैतिक, चारित्र्य और आध्यात्मिक सब विषयों के कारण संसार के समस्त देशों का शिरोमणि था। पर आज वही भूमि संसार भर का पैर बन रही है। आज भारत आपका दास है इसलिये राम आप से आज अपील करता है कि मस्तिष्क! मस्तिष्क!! तुझे बलवान होना हो यदि तुझे स्वस्थ रहना हो तो अपने पैरों की चिन्ता करो। यदि पैरों की कुछ हानि हुई अथवा चोट लगी तो उससे मस्तिष्क की भी हानि होगी। यदि पैरों में दर्द हो रहा है तो क्या उस से मस्तिष्क को हानि न पहुंचे गी' अरे! दिमाग़!! राम तुझ से तेरे पैरों के नाम पर अपील करता है। वह मा जिसने अपने दर्शन और काव्य से अपने उच्च विचार और धर्म से समस्त संसार का पालन किया है वही संसार की माता, वही समस्त संसार को प्राचीन समय में पालन करने वाली आज बीमार है आज आप की माता बीमार है। सब से बड़ी शाखा आर्यन परिवार Aryan Family की ज्येष्ठा भगिनी आज पीड़ित है। क्या, आप उसकी सेवा न करोगे। गौ बीमार है मर नहीं गई है। बीमार है, आप उसकी सहायता कर सकते हैं। आप उसकी चिकित्सा में सहायता दे सकते हैं। भारतवर्ष संसार भर को दूध दे रहा है, भोजन दे रहा है, बल प्रदायिनी औषधि दे रहा है ज्ञान दे रहा है। उस भारतवर्ष को गौ के समान ही पोषण होना चाहिये। यह गौ भूखी प्यासी मर रही है, तड़प रही है। आपको, उसे केवल दाना और घास देनी होगी

समस्त संसार उससे दूध ले रहा है, उसे सस्ती घास और कुछ ऐसी चीज़ दीजिये, जिस से वह अपना शरीर और आत्मा दोनों को रख सके। मेरे इस कथन पर यूरोप के गौ-भक्षी और मांस भोजी देश कहेंगे कि हम इस गौ की हत्या करेंगे और खायेंगे। अच्छा, आपकी जो मर्ज़ी हो करो, किन्तु एक बात का स्मरण रक्खो, यदि आप उसकी हत्या करना और उसको खाना चाहते हो तो आपको उसका स्वास्थ्य अच्छा रखना चाहिये। पीड़ित गाय का मांस आपके स्वास्थ्य को नष्ट कर देगा, आपको हानि पहुंचावेगा। अरे इङ्गलैण्ड और यूरोपियन महाशक्तिओ! तुम्हें उसके स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिये।

इसके आगे इस व्याख्यान में, राम ने अमेरिकनों से भारत सुधार की क्यों आशा की जा सकती है' इस बात पर विशेष बल देते हुये, अमेरिकनों के स्वार्थत्याग की प्रशंसा करते हुये कहा थाः—'कल्पना कर लो आज भारतवर्ष बहुत बुरा है। कल्पना कर लो कि भारतवर्ष ने संसार को कुछ भी नहीं दिया है कल्पना कर लो संसार में हिन्दू सब से ख़राब हैं तो उनका आप पर पूर्ण अधिकार है। उनका यही प्रबल प्रमाण है कि आप को भारतवर्ष की ओर क्यों ध्यान देना चाहिये?

यदि कोई मनुष्य रोगी है तो वह सिर्फ़ अपने लिये ही हानि नहीं पहुंचाता है। किन्तु सब स्थानों में अपनी बीमारी फैलाता है। एक आदमी जो कि सर्दी से पीड़ित है वह सङ्क्रामक रोग दूसरों को भी हो जाता है। हिन्दुस्तान ठण्ड से इस समय पीड़ित है। आप कहोगे कि एक गर्म देश में ठण्ड कैसे हो सकती है? भारतवर्ष जाड़े के शीत से पीड़ित नहीं है

उसको धनाभाव, दारिद्रय की सर्दी सता रही है। अब आप स्वयं सोचलें कि यदि एक आदमी को ठण्ड सता रही है। तो उसके पड़ोसी पर भी उसकी ठण्ड का प्रभाव होगा। य दि एक आदमी हैज़ा से पीड़ित है, उसकी बीमारी दूसरों को भी हो जावेगी। यदि कोई मनुष्य शीतला के रोग से पीड़ित है तो दूसरों को भी वही बीमारी होगी इसलिये प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि पीड़ित मनुष्य की उसके लिये अन्य लोगों के कारण सहायता अवश्य करें। यदि आप पीड़ित मनुष्य की चिन्ता नहीं करते तो सर्वत्र उसकी बीमारी फैला रहे हो। समस्त संसार के निमित्त राम आप से भारतवर्ष का पक्ष ग्रहण करने के लिये कह रहा है। सत्य के नाम पर न्याय के नाम पर राम आप से भारतवर्ष का पक्ष उचित रीति से करने के लिये प्रार्थना कर रहा है। आप पूछेंगे कि भारतवर्ष के साथ क्या बुराई हो रही है? भारतवर्ष की बीमारी राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक है।

* भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति *

राम आप से अज्ञानपूरित भूमि की राजनैतिक परिस्थिति के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहेगा। जिस देश में अगणित आदमी दुर्भिक्ष से मर रहे हों। जहां छोटी सी उम्र के बालक बालिकायें भूखे और अनाहार मृत्यु के ग्रास बन रहे हों। जहां होनहार नवयुवक प्लेग और दरिद्रता के शिकार हो रहे हों, जहां सुकोमल नन्हें २ बच्चे सूखे और उदास मुखों से रो रहे हों। क्योंकि भूख की मारी माताओं के उनके पालन पोषण के लिये दूध नहीं है। जिस देश में मनुष्य

मुश्किल से दोनों समय भोजन कर सकता है, जहां मनुष्य साधारण स्थिति में रहने पर भी बड़ा समझा जाता है। जहां राजा और रईस भी शोचनीय आर्थिक दशा में फंसे रहते हैं, जिस देश में राजभक्त सहिष्णु और कृतज्ञ हों, कोई आश्चर्य नहीं उस देश की चाहे जो कुछ यन्त्रणायें और कष्ट हों......बड़े बड़े वेतन के पदों पर अङ्गरेज़ हैं। तीस करोड़ भारतवासियों में से एक भी पार्लियामेन्ट में प्रतिनिधि नहीं है, समस्त देशी उद्योग धंधे विदेशियों के हाथ में हैं। हिन्दू को सड़ा दुर्गन्धियुत पानी पीने को मिलता है और कभी कभी वह भी बेचारे को नहीं मिलता। इतनी स्वतन्त्रता वहां के मनुष्य को हो सकती है अथवा है कि वे अपना स्वास्थ्य धन और चरित्र शराब से नष्ट कर रहे हैं, भारतवर्ष के निरीह और शान्तचित्त व्यक्तियों में अङ्गरेजी नशीले वस्तुओं का खूब प्रचार बढ़ गया है। अङ्गरेजों के समय में इन शराबों का प्रचार हुआ है। बस इतने से ही आपको भारतवष को राजनैतिक परिस्थिति का पता लग जावेगा। यह उनकी बाहरी दशा का दिग्दर्शन है।

अब राम आपके सामने उन भीतरी बुराइयों को कहना चाहता है जिसके कारण वे (भारतवासी) दुःख उठा रहे हैं। अब आप उन (भारतवासियों के) पतन का असली कारण सुनेंगे अब आप उनकी निराशाओं और कठिनताओं का प्रधान कारण सुनेंगे, इस विषय पर बहुत कुछ कहा जा सकता है पर लोग अपना बहुत सा समय समस्त विषय को सुनने के लिये नहीं दे सकेंगे इसलिये मैं थोड़े ही शब्दों में सब विषयों को कहता हूं।

भारतवर्ष का पतन, भारतवर्ष की अवनति, का कारण वेदांत दर्शन में समझाया गया है। यह कर्म का कारण है। कर्म का अर्थ है कि जो कुछ हमारे करने से फल प्राप्त हो। कर्म का अक्षरशः अर्थ कार्य-अर्थात् जो कुछ हम करते हैं। यही कारण है कि उन्हों (हिन्दुओं) ने जो कुछ पहले किया था उसका फल आज भुगत रहे हैं। जैसा हिन्दुओं ने भारतवर्ष के प्राचीन निवासियों के साथ व्यवहार किया था, वैसा ही वे फलस्वरूप व्यवहार विजेताओं से प्राप्त कर रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति जो बीमार पड़ता है, वह अपने रोग का खुद उत्तरदाता है। वह अपने को अज्ञानता से, विशेष भोजन करने से अथवा स्वास्थ्य सम्बन्धी किसी दूसरे नियम के भङ्ग करने से रोग में फंसा लेता है। सो आज हिन्दुस्तानी अपनी अज्ञानता से अपने कर्मों के फल से ही पीडित है। किन्तु अब इस बात पर विचार नहीं करना चाहिये कि बीमारी कैसे आई ? डाक्टर रोगी के पास उसको धिक्कारने फटकारने नहीं जाता है वह रोगी को प्रसन्न करने जाता है। अतएव यह समय भारतवासियों के कुकर्म और बुराईयों में दोष ढूंढने का नहीं है हमारा कर्तव्य, आपका कर्तव्य उनकी विपत्ति में उन्हें सहायता देने का है।

* भारतीय जाति पांति की उत्पत्ति *

सम्पत्ति शास्त्र से हम को श्रमविभाग के सिद्धान्त का पता लगता है। फैक्टरी अथवा मिल में जहाँ कारवार की उन्नति करनी होती है, वहां कार्य का विभाग करना पड़ता है इस मनुष्य देह में भी श्रमविभाग है। आंखें केवल

देखती हैं, सुन नहीं सकती । कान केवल सुन सकते हैं वे आंखों का काम नहीं कर सकते । हाथ पैरों का काम नहीं कर सकते । हाथों को अपना काम और पैरों को अपना काम करना होगा, यदि हम आंखों से सुनना चाहते हैं और नाक के बल चलना चाहते हैं, यदि हाथों से नाक का काम लेना चाहते हैं और कानों से खाना चाहते हैं तो इसका परिणाम क्या होगा ? इस से हम शरीर संगठन की प्रथमावस्था में पहुंच जावेंगे हम यह नहीं चाहते कि आंख कान, नाक सब का काम केवल एक पेट ही किया करे । नियम पूर्वक श्रमविभाग की आवश्यकता है । और इस सिद्धान्त का विचार ही किसी समय भारतवर्ष में जाति प्रणाली (caste system) रखी गई थी । वर्णव्यवस्था केवल श्रमविभाग के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी । एक व्यक्ति ने पुरोहित अर्थात् जनता में ज्ञान के प्रचार करने का कार्य उठाया, दूसरे व्यक्ति ने योद्धा के कर्तव्य का भार अपने ऊपर लिया । क्योंकि यह दूसरा आदमी युद्ध के विशेष योग्य था । वह केवल अस्त्र शस्त्र सञ्चालन करने, लड़ने और अपने शत्रुओं के नष्ट करने के अतिरिक्त धर्म प्रचारक के शान्त कार्य को नहीं कर सकता था । बस यही श्रमविभाग था । कुछ ऐसे व्यक्ति थे, जो केवल अचल जीविका के ही योग्य थे जैसे वणिक वृत्ति करनेवाले । कुछ ऐसे भी थे जो न तो वणिकवृत्ति करने योग्य ही थे न धर्मप्रचार का कार्य कर सकते थे, ऐसे मनुष्य ख़ास करके वहां के रहनेवाले प्राचीन जङ्गली थे । जिनको किसी प्रकार की शिक्षा दीक्षा प्राप्त नहीं हुई थी । जिन्होंने अपना बाल्यकाल और शैशवावस्था सुस्ती और

आलस्य में विताया था वे धर्म प्रचारक का कार्य नहीं कर सकते थे, वे योद्धा (क्षत्रिय) का काम भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि उन्होंने कोई क़वायद अथवा युद्ध के लिये, जिन आवश्यक व्यवस्थाओं की आवश्यकता हुआ करती है उनको नहीं सीखा था। वे वणिकवृत्ति करने के योग्य भी नहीं थे, क्योंकि इसमें भी कुछ ज्ञान और दक्षता की आवश्यकता हुआ करती है। ऐसे मनुष्य साधारण श्रमजीवी मेहतर अथवा और प्रकार के मज़दूरी कार्य करने को तैयार होगये। बस भारतवर्ष में इन्ही चार विभागों में कार्य विभक्त हो गया। धर्म प्रचार का कार्य करनेवाले ब्राह्मण कहलाये जाने लगे, वे मनुष्य जिन्होंने योद्धा का कार्य करना आरम्भ किया, वे क्षत्रिय कहलाये जाने लगे। वे जिन्होंने वणिकवृत्ति का अवलम्बन किया, वे वैश्य कहलाये जाने लगे। जिन्होंने साधारण मज़दूरों आदि का कार्य लिया वे शूद्र कहलाये जाने लगे। चाहे जो कोई ऊपर लिखे हुये चारो कर्म्मों में से जो कार्य उसे पसन्द होता कर सकता था। इसमें कोई रुकावट नहीं थी, इसमें कोई बन्धन नहीं थे। क्या अमेरिका में श्रमविभाग नहीं था? अमेरिका में भी यह श्रेणियां हैं। इङ्गलैण्ड में भी ऐसी श्रेणियां हैं। सर्वत्र इस ढङ्ग की जाति पांति हैं। क्या अमेरिका में जाति नहीं है। क्या अमेरिकनों में अपर टन (upperten) और प्लेबियन (Plebveians) जातियां नहीं हैं। सर्वत्र यह विभाग प्राकृत विभाग है। तब फिर भारतवर्ष में ही जाति विभाग में क्या बुराई है?

किसी समय भारतवर्ष में हिन्दू नियमों पर एक पुस्तक मनुस्मृति लिखी गई थी। उस समय वह पुस्तक सब श्रेणी

के मनुष्यों के लिये सहायक थी। प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों के नित्य प्रति के व्यवहार के भिन्न उपाय और नियम इस पुस्तक में हैं। इस पुस्तक में ब्राह्मणों को क्या करना चाहिये, इसका विवेचन किया गया है, और क्षत्रियों का क्या कर्तव्य है इसका निरूपण किया है। उस समय के सभी श्रेणियों के मनुष्यों के मतलब को पूरा करने के लिये यह पुस्तक लिखी गई थी। पर अब समय समय पर इस पुस्तक का तात्पर्य ठीक नहीं लगाया जाता है। उसकी बहुत सी बातें उलट पलट करदी गई हैं। श्रेणी विभाग और श्रमविभाग की समस्त परिपाटी नष्ट कर दी गई है, बिगाड़ दी गई और भ्रष्ट कर दी गई है। उन्हों (हिन्दुओं) ने उसे जटिल कर दिया है। जाति का जीवन नष्ट हो चुका है। सब पदार्थ बनावटी और यन्त्र स्वरूप हो गये हैं। जिसके कारण मनुस्मृति मनुष्यों की भलाई करने की अपेक्षा मनमानी अत्याचार करने वाली होगई है।

* भारतीय जाति का पतन *

अपने इस व्याख्यान में उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी ने भारतवर्ष में वर्णव्यवस्था की वर्तमान प्रणाली से जो हानियां हो रही हैं, उसको खूब दर्शाया है। उन्होंने कहा था कि श्रम विभाग के अनुसार जो चार वर्णों में जाति बांटी गई हैं उसका उद्देश्य अत्युच्च है, बुरा नहीं है पर वर्तमान प्रणाली इतनी भ्रम पूर्ण हो गई है कि उससे भारतवर्ष की अपरिमित हानि हो रही है। स्वामी जी ने अपने इस व्याख्यान में दिखलाया है कि भारतवर्ष की सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक अवनति का

कारण नीचे की जातियों के प्रति अच्छा व्यवहार न होना है। इस प्रसङ्ग पर स्वामी जी ने बड़े ही स्वतन्त्र विचार प्रगट किये हैं। जो लोग स्वतन्त्र विचारों से ऐसे भागते हैं, जैसे ज्वर से पीड़ित व्यक्ति खांसी से कांपता हो, ऐसे लोगों को इस शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी ने खूब फटकार बतलाई है। अन्धपरम्परा और लकीर के फ़क़ीरों के लिये स्वामी जी का कथन थाः—

"मनु के समय से कितनी बार दुनिया बदली है। नदियों का रुख़ बदल गया है। बड़े २ जङ्गल छिन्न भिन्न हो गये। पेड़ पत्ते जीव जन्तु सब बदल गये। क्षात्र कर्त्तव्य अर्थात् युद्ध के कार्य का तो भारतवर्ष से नाम निशान ही मिट गया। देश की भाषा (संस्कृत) वहां बिलकुल मिट गई। आज के हिन्दुओं के लिये संस्कृत वैसे ही अजनवी भाषा है जैसे लेटिन और ग्रीक भाषाएं"।

तिस पर भी आज हिन्दुस्तान में मनु ने जाति पांति के नियम जो अपने सहयोगियों के लिये बनाये थे, उन्हीं का राज्य हो रहा है। स्वतन्त्रता पूर्वक कभी किसी बात का बिचार करना धर्मभ्रष्ट और कभी कभी विचार करना बड़ा भारी पाप समझा जाता है। जो कुछ मृतक भाषा से आती है, वही पवित्र समझा जाता है। अगर आपकी युक्तियां पुराने विचार पुरानी कल्पनाओं पर अपना रङ्ग नहीं जमा सकती हैं तो आप धर्मभ्रष्ट हैं, प्रत्येक मनुष्य आपके विरुद्ध होजायगा।" इसके आगे स्वामीजी ने भारतवर्ष में अछूत जातियों के प्रति जो कड़ा व्यवहार हो रहा है, उसका बड़े मर्म भेदी, शब्दों में वर्णन करते हुए बतलाया है कि वर्ण व्यवस्था अर्थात्

जाति पांति की प्राणली इसलिये थी कि सब काम बंट जाँय प्रेम और एकता का भाव रहे, पर वह नहीं रहा। इस विषय पर स्वामी जी ने प्रसंगवश एक स्थान पर कहा है कि हिन्दुओं की बुद्धि * चीन की महिलाओं के पैर के समान जकड़ी हुई है। जिसका कारण उन्होंने जाति बन्धन बतलाया है। भारतवर्ष में जो बहुत से मतमतान्तर फैले हुए हैं, उन सब का कारण स्वामी जी ने वर्तमान जाति बन्धन ही ठहराया है। हिन्दुओं की जातियों के बन्धन की त्रुटियां बतलाते हुये भी उन्होंने इस व्याख्यान में स्थान स्थान पर अमेरिकनों को भी खूब फटकार बतलायी है, अमेरिकनों की सामाजिक स्थिति में जो त्रुटियां हैं, उनका भी निर्भय हो कर खण्डन किया है।

स्वामी जी ने अपने इस व्याख्यान में यही कहा था कि जीवन की स्थिति वंश-परम्परा, गुण-संयोजना और शिक्षा पर निर्भर है। वंशपरम्परा का नियम जीव जन्तुओं में विशेष देखने में आता है। मनुष्य की शारीरिक शक्ति और इन्द्रियां

* चीन में स्त्रियों की सुन्दरता का लक्षण उनका छोटा पैर समझा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत से रुपये वालों की स्त्रियों के पैर इतने छोटे हो जाते हैं वे बिना दूसरे के सहारे चल फिर नहीं सकती हैं। चौदह, पन्दरह वर्ष हुए चीन में जब बाक्सर विद्रोह हुआ था, तब चीन की भूत पूर्व महारानी ने आज्ञा की थी कि आगे से कोई स्त्री अपना छोटा पैर न रक्खे। तब से उस कुप्रथा में सुधार होने लगा है स्वामी रामतीर्थ का हिन्दुओं की बुद्धि चीन की महिलाओं के पैर से तुलना करने का यह ही तात्पर्य है कि जैसे चीन देश की रमणियां अपने पैरों के होते हुए भी बिना किसी दूसरे के सहारे नहीं चल सकती हैं, वैसे ही हिन्दुओं की बुद्धि जकड़ी हुई है।

भी वंशपरम्परा संस्कार के सिद्धन्तों पर निर्भर रहती है। किन्तु मनुष्य शिक्षा तथा संयोजना से खूब बढ़ जाता है, उच्च दशा को प्राप्त कर लेता है। पक्षियों के बच्चे जब अण्डों में से निकलते हैं तब उनमें अपने माता पिता के समान ही कार्य करने का ढङ्ग होता है। कितने ही पक्षियों के बच्चे, जन्म लेते ही मक्खियों के रहने के स्थान पर वैसे ही लपकने लग जाते हैं, जैसे उनके मां बाप लपकते थे। वे अपने मां बाप से ही सब पैतृक बातें ग्रहण करते हैं और उसके बढ़ने तथा उन्नति होने में उनकी समाप्ति हो जाती है। दूसरी ओर देखिये कि मनुष्य जन्म इसलिये होता है कि वह अपनी शिक्षा और संयोजना से अपनी उन्नति करलें। क्या छोटा सा सुन्दर बच्चा उतना ही बेखबर और निर्बोध होता है जैसे कि पशु के बच्चे? नहीं, पशु का बच्चा किसी अंश में मनुष्य बालक से चतुर होता है। मनुष्य और पशु में भेद यही है कि पशु का बच्चा अपनी वंशपरम्परा के नियमों के अनुसार ही वृद्धि प्राप्त करता है किन्तु मनुष्य बालक शिक्षा तथा ग्राह्य शक्ति से अपनी वंशपरम्परा की शक्तियों का इतना विस्तार कर लेता है कि जिससे वह समस्त संसार को काबू में ला सकता है। हिन्दुओं से बड़ी भारी भूल यह हुई कि उन्होंने शिक्षा तथा ग्राह्य शक्ति का परित्याग करके, हिन्दू समाज पर वंशपरम्परा के नियमों के सिद्धान्त का इतना बोझ लाद दिया है, जिससे मनुष्य, पशु और पेड़, पत्ते के समान हो गये हैं। वे व्यवहारिक रूप से आत्मा की आसीम सम्भावनाओं में विश्वास नहीं करते हैं उन्हें इस बात का विश्वास नहीं रहा है कि शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता

है। वे शूद्र के लड़के को शूद्र ही रखना चाहते हैं और वैश्य पुत्र को वैश्य रखना चाहते हैं। क्योंकि उन हिन्दुओं का कहना है कि एक अंजीर के वृक्ष से अंजीर ही उत्पन्न होते हैं। एक कुत्ते के कुत्ता ही उत्पन्न होता है। इस भांति स्वामी जी ने हिन्दुओं में स्वतन्त्र विचार का जो अभाव है। उसको बहुत निन्दा की है आगे उन्होंने इस बात पर अत्यन्त खेद प्रकट किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि कोई भी दस्तकारी वग़ैरह के कार्य करने के लिये तैयार नहीं होते। स्वामी जी कहते हैं:-ब्राह्मण-सब से ऊँची श्रेणी के लोग--दस्तकारी का काम करना अपनी शान के विरुद्ध समझते हैं। ऊंची श्रेणी के मनुष्य उस व्यवसाय को करने के लिये कभी तैयार नहीं होंगे जो रीति रिवाज के कारण उनकी सामाजिक स्थिति के प्रतिकूल हों। जैसे तीनों ऊंची श्रेणियों में से कोई ब्राह्मण कोई क्षत्रिय और कोई वैश्य, कभी भी चमार, नाई, मल्लाह, रङ्गसाज, लुहार, दर्जी, मेमार, बढ़ई, जुलाहा, कुम्हार, आदि के साधारण कार्यों को नहीं लेंगे। मेहतर के कार्य का तो कहना ही क्या है? इन ऊंची श्रेणी के मनुष्यों को ऐसे कार्यों के छूने की अपेक्षा मर जाना ही मंजूर है। वे चमड़े का व्यापार कभी नहीं करेंगे जिन ऊंची जातियों के पास थोड़ा सा रुपया है वे कभी इन व्यापारों को नहीं करते। ये सारे व्यापार उन छोटी जातियों पर छोड़ दिये गये हैं जिनके पास कुछ रुपया नहीं है तब भला भारतवर्ष के शिल्प वाणिज्य की कैसे उन्नति हो सकती है? जब यह दशा है तो हिन्दू कैसे उपयोगी कला कौशल में बढ़ सकते हैं। अमेरिका आज अपने शिल्प बाणिज्य के कारण ही धनाढ्य है, आज इङ्गलैण्ड तथा अन्य

यूरोपियन शक्तियां अपने शिल्प वाणिज्य के कारण ही धनाढ्य हैं। इन देशों में जो रुपये वाले हैं उनके हाथ में शिल्प वाणिज्य है उन आदमियों से क्या आशा की जा सकती है जिनमें से तीन चौथाई आदमी औद्योगिक धन्धों से घृणा करें, अच्छे व्यवसाय से नफ़रत करें, पुराने व्यवसाय और मुर्दा दस्तूरों से वृक्ष के समान धर्म धर्म कहते हुये चिपटे रहें।

इतना कह कर स्वामी जी ने अमेरिकनों से भारतवासियों की सामाजिक परिस्थिति के सुधारने में सहायता देने का अनुरोध किया। इस अनुरोध में स्वामी जी ने कहा था कि ऐसी सहायता करो जिससे हिन्दू अपने पूर्वजों की बातों को आश्रय दें न कि स्वयं पूर्वजों की बातों के आश्रित हो जांय। इस स्थल पर स्वामी जी ने थोड़े से भावपूर्ण शब्दों में भारतवर्ष की महिलाओं की वर्त्तमान स्थिति के विषय में कहा था—संयुक्त राज्य (United States) से दुगनी भारतवर्ष में स्त्रियों की संख्या है पर उनमें से मुश्किल से सैकड़े पीछे एक भी अपना नाम लिख सकती है। इसी स्थल पर स्वामी जी ने हिन्दुओं के धर्म और गोरक्षा सम्बन्धी विचारों की व्याख्या करते हुये कहा था—सुना जाता है कि मुसलमानों के प्रथम विजेता ने हिन्दुओं के इस घोर वहम (गो रक्षा के विचार) से लाभ उठाया था। जब मुहम्मद ग़ोरी ने प्रथम बार हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया था तब राजपूत बहादुरों ने उसे पीछे हटा दिया था किन्तु वह भारतवर्ष को फिर लौट आया और पुनः आक्रमण किया इस बार हिन्दुओं में जो मिथ्या विश्वास और वहम थे उनकी उसे पूरी जानकारी हो गई थी। बस उसने अपनी सेना के चारों ओर गायों की

कतार खड़ी करके रक्षा की थी बस यह एक दुस्साध्य किला था हिन्दू कैसे अपने अस्त्र शस्त्र पवित्र गौओं के ऊपर उठाते, दयावान हिन्दू, भोली एवम् पवित्र गौओं को देखते ही भय से काँप उठे। उन्होंने गौओं की रक्षा की पर अपने देश को सदैव के लिये खो दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि कितनी ही शताब्दियों तक और आज भी हजारों नहीं करोड़ों गाय विजेताओं के हाथ से मारी जाती और खाई जाती है चाहे यह कथा सत्य न हो पर आज कल की दशा देखते हुये यह अलङ्कार अवश्य सत्य प्रतीत होता है। इस ढङ्ग की अज्ञानता प्राचीन धर्म के नाम पर अब तक प्रचलित है। भारतवर्ष की अन्यान्य धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों पर कहते हुये स्वामी जी ने पुराने ढर्रे के संस्कृत के पण्डितों की बड़ी ख़बर ली है उनके विषय में कहा था कि वे उस संस्कृत भाषा के व्याकरण को ही रटा करते हैं जो कहीं नहीं बोली जाती है।

इसके आगे स्वामी जी ने भारतवर्ष के निवासियों में जो विरोध भाव फैल रहा है और हिन्दू मुसलमानों में जो अनबन रहती है उसका वर्णन बड़े मर्म भेदी शब्दों में किया है इसके आगे उन्होंने भारतवर्ष कैसे उठ सकता है, इस प्रश्न को मीमाँसा की है कि भारतवासियों में धर्म की मात्रा आवश्यकता से अधिक बढ़ी हुई होती है। इसलिये वहां वेदान्त के व्यवहारिक ज्ञान के प्रचार की आवश्यकता है। किसी अपराधी का सुधार उसको जेल भेजने अथवा दण्ड देने से नहीं हो सकता है, जब तक उसे उसके अपराध का ज्ञान न कराया जाय। एक अज्ञानी बालक अग्नि को स्पर्श करके, अपना हाथ जला लेता है। क्योंकि वह यह नहीं जानता कि अग्नि के स्पर्श

करने से हाथ झुलस जाता है।

बालक को समझा दो कि अग्नि के स्पर्श करने से हाथ झुलस जाता है तब वह उसको कभी नहीं छुयेगा। बस इसी तरह से आध्यात्मिक नियमों से लोगों को परिचित करो। बस यही एक मात्र औषधि है यही इसका इलाज है खोष्ट धर्म से भारतवर्ष नहीं उठ सकता है। इस व्याख्यान में एक स्थान पर यह भी कहा था "भारत भूमि में एक विशेषता है कि बिना धर्म के वहां पर कोई सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधार नहीं हो सकता है। "इण्डियन नेशनल कांग्रेस, अथवा और कोई राजनैतिक या सामाजिक सुधार करने वाली संस्था या संगठन, भारतवर्ष के सर्व साधारण के हृदय में स्थान नहीं पा सकती है क्योंकि धर्म के द्वारा यह विचार उनको नहीं मिलते हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष के सुधार में व्यवहारिक वेदान्त के अतिरिक्त और किसी का प्रभाव नहीं हो सकता है। इसके आगे स्वामी जी ने कहा कि भारत सुधार के लिये शिल्प विद्यालय आदि खोलना नीच की बातें हैं, प्रथम-उच्च और नीच जाति के लोगों में शिक्षा फैलना और स्वतंत्र भावों का फूंकना है इसके आगे उन्होंने अमेरिकन मिश्नरी (पादरी) आदि यहां पर शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये उनके सम्बन्ध में कहा था कि भारतवर्ष में पादरियों के भेजने से कुछ लाभ नहीं होगा। अमेरिका से जो ईसाई पादरी भारतवर्ष को जाते हैं, वे वहां पर तीन तीन सौ रुपिया मासिक वेतन लेते हैं, वे बड़े राजसी ठाट में नबाबों की तरह से रहते हैं हिन्दू परिवारों में परस्पर विरोध उत्पन्न करा देते हैं भारतवर्ष में जो अगणित जातियां

हैं, उनमें एक और जाति बढ़ा देते हैं। जो हिन्दुस्तानी ईसाई हो जाता है वह हिन्दुओं का दुश्मन बन बैठता है। हिन्दू उन से नहीं मिलते हैं और वे हिन्दुओं से नहीं मिलते हैं। इससे और भी ख़राबी होती है। लड़कियां अपने माता पिता से अलग कर दी जाती हैं और स्त्रियां अपने पतियों से अलग हो जाती है। ईसाई पादरी अशिक्षित साधारण हिन्दुओं में उन (हिंदुओं) की शिक्षा से भी ख़राब गिरजे की शिक्षा प्रचलित करना चाहते हैं। ईसाई पादरी छोटे छोटे बच्चों को अपने मां बाप से छोड़ने और ईसाई धर्म में आने की शिक्षा देते हैं। इस भांति स्वामी जी ने ईसाई पादरियों को फटकार बतलाकर आगे इस व्याख्यान में भारतवर्ष की वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये थे। उन्हों ने कहा था कि भारतवर्ष के किसी विश्व विद्यालय में एक अङ्गरेज़ी को छोड़कर और कोई जीवित जागृति भाषा नहीं सिखलाई जाती है। सो भी इस कारण से सिखलाई जाती है कि अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों को अंगरेज़ अफ़सरों के नीचे काम करना पड़ता है। अङ्गरेज़ लोग भारतवासियों की भाषा पढ़ने का कष्ट नहीं उठाते। बेचारे भारतवासियों को उनकी सेवा करनी है इसलिये अङ्गरेज़ी पढ़नी पड़ती है। गणित इतनी अधिक पढ़ाई जाती है कि अमेरिका के किसी विश्वविद्यालय में न पढ़ाई जाती होगी। चित्रकारी, शिलपकार्य और मिकेनीकल एञ्जीनियरिङ्ग भी नहीं सिखलायी जाती है। कपड़े बुनने और खाने का काम किसी विश्वविद्यालय में नहीं सिखलाया जाता है।

अस्त्र शस्त्र विद्या का तो पूछना ही क्या है? भारतवर्ष के

निवासियों को अपने घरों में किसी प्रकार के हथियार रखने की आज्ञा नहीं है यदि कोई आदमी अपने घर में बड़ा चाकू भी रक्खे तो उसको जेल में ठूंस दिया जाता है। इस प्रकार स्वामी जी ने भारत की वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में बहुत सी बातें कहीं थीं।

इस तरह से स्वामी जी ने भारतवर्ष को शिक्षण, सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति का निदर्शन करा के अमेरिकनों से भारतवर्ष में जाकर भारतवासियों के साथ काम करने की सलाह दी है। उन्होंने कहा थाः—

राम नहीं चाहता कि पादरियों के ढङ्ग के आदमी अमेरीका से भारतवर्ष में पहुंचे। जो बड़े शानदार बङ्गलों में रहते हैं। जो मनुष्यों पर प्रभु बने हुये हैं, जो गाड़ियों पर चलते फिरते हैं। वे भारतवर्ष को नहीं उठा सकते हैं। हम चाहते हैं कि भारतवर्ष को वे लोग जांय, जो सच्चाई के लिये शहीद हों। जो असली कार्य करने वाले हों, पेरियों* के साथ फर्श पर बैठ सकते हों। जो उनके समान फटे चिथड़े कपड़े पहनने में परितृप्त हों जो उनके समान भूखे रहने में ही सन्तुष्ट हों। उनकी अधजली, कच्ची रोटी खाने को तैयार हों जो अपने इन्द्रिय जनित सुखों को त्यागने और अपने सब प्रकार के आराम पर लात मारने को तैयार हों। चाहे इस कार्य के परिवर्तन में उन्हें कुछ पुरस्कार मिले या नहीं, पर उनका उद्देश्य निष्काम कर्म हो। इसके आगे उन्होंने अमेरिकनों को सलाह दी है कि भारतवासियों की नीच जातियों में साहसिक भाव

* मदरास प्रा० की ओर एक अछूत जाति होती है।

जापानियों की तरह से उत्पन्न करने चाहिये । जापानी लड़के अमेरिका आकर जहाज तक का किराया अपने पास से देते हैं वे अमेरिकनों के घरों में काम करते हैं और भिन्न भिन्न स्कूलों में पढ़ने का भी प्रबन्ध करलेते हैं । इस तरह से वे अमेरिका में थोड़े दिन रहकर जापान को अपनी जेब रुपयों से और मस्तिष्क को विद्या से भर कर लौटते हैं । इस विषय पर व्याख्यान देते हुये एक स्थान पर कहा था कि दूसरे देशों को देखना ही अपने आप विद्या प्राप्त करना है प्रसङ्गवश अमेरिकनों से अपील करते हुये स्वामीजी ने एक स्थान पर कहा था:—"भारतवर्ष में कोई हिन्दू, मुसलमान अथवा कोई साधारण हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेज़ अथवा अमेरिकन के पास पहुंचने का साहस नहीं करता है । वह गोरे आदमी से बहुत ही डरता है वह गोरे आदमी के सामने अदब के साथ बीस, पचीस क़दम के फ़ासले पर खड़ा होता है । वह पेन्ट और हैट देख कर ही थरथराने और कांपने लग जाता है । यदि रेल की किसी गाड़ी में कोई यूरोपियन बैठा हो तो वह उसमें बैठने नहीं पाता है । राम ने कितने ही रेलवे स्टेशनों पर देखा है कि यूरोपियन ने हिन्दुस्तानियों को ठोकर मारकर निकाल बाहर किया है । यदि कोई यूरोपियन किसी हिन्दुस्तानी को अपने मकान में आते हुये देखता है तो वह अपने नौकर से विचारे हिन्दुस्तानी को ठोकर मारकर बाहर निकालने के लिये कह देता है । बस इस तरह से विदेशियों द्वारा हिन्दुस्तानियों में दुर्बलता दुर्बलता दुर्बलता आगई है...।

भारतवर्ष की वर्त्तमान राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति; वहां के मनुष्यों में स्वतन्त्रता के भाव पैदा नहीं होने

पर भी उनका अमेरिका में अपूर्व सम्मान हुआ था स्वामी रामतीर्थ के यह सुन्दर विचारों का ही प्रभाव था कि अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश के निवासियों के हृदय पर उन्होंने प्रतिष्ठा प्राप्ति की। वहां से विदा होते समय अनेक सभा सोसाइटियों ने उनको अभिनन्दन पत्र समर्पित किये थे। इस तरह वहां वे विजयपताका फहराकर सन् १६०५ में स्वदेश को लौट आये थे। भारतवर्ष में आकर उन्होंने अपने व्याख्यानों की धूम मचा दी थी। जिन्होंने स्वामी जी के अमेरिका जाने से पहले व्याख्यान सुने और वहां से लौटकर आने पर सुने हैं, उन का कहना है कि अमेरिका और जापान से लौटकर स्वामीजी को यह लौ लग गयी थी कि भारतवर्ष की भी अन्य देशों के समान ही उन्नति होनी चाहिये। उनका यह उद्योग किसी अंश में सार्थक भी प्रतीत होता दिखलाई पड़ता था, क्योंकि जहां कहीं वे जाते थे वहां एक नवीन शक्ति का सञ्चार हो जाता था। हलचल सी मच जाती थी। उत्तर में ऐसा कोई स्थान न होगा, जहां स्वामी राम के व्याख्यानों की धूम न मची हो। स्वामी जी के व्याख्यानों की यह धूम बहुत नहीं रही। विलायत से लौटकर उन्होंने इस देश में लगभग एक वर्ष तक प्रचार किया था। सन् १६०६ में कुछ दिन प्रचार करके हिमालय पर्वत पर चले गये। वहां पुनः एकान्त सेवन तथा कुछ ग्रन्थ लिखने लगे।

जलसमाधि

यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि भारत माता के सच्चे सपूत बहुत दिन तक इस संसार में नहीं रहने पाते हैं। और देशों के सम्बन्ध में यह बात हो या न हो पर भारतवर्ष के सम्बन्ध में यह बात अक्षर २ फबती है कि जिसकी यहां चाह है उसकी परमेश्वर के यहां भी चाह है। कहते हुये हृदय विदीर्ण होता है कि संबत् १९६३ के कार्तिक मास की अमावस्या अर्थात् १९०६ की १७ अक्टूबर भारतवर्ष में अन्धकार उपस्थित करने के लिये हुई थी। अरी ! दिवाली !! तू अन्धियाली है !!! तू हमारे यहां के साधु महात्माओं को हरण करने के लिये ही आया करती है ! एक तो हमारे देश में सच्चे साधु महात्मा हैं ही नहीं, और जो दो एक हुये हैं, उनका तू हरण कर लेती है !! जिस दिन सन् १९०६ में भारतवर्ष कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक डायमन्ड हार्बर से पेशावर तक सारे देश में दिवाली के आगमन की खुशी की रोशनी के कारण चकाचौंध हो रहीथी, तब तो दुष्ट मृत्यु ने भारतमाता के प्रिय पुत्र स्वामी रामतीर्थ को झपट लिया। जिससे भारतवासियों की रोशनी से आंखें चकाचौंध होने पर भी हृदय का अज्ञानान्धकार ज्यों का त्यों

शोक प्रकाश

जिस किसी ने स्वामी राम की मृत्यु का समाचार सुना उसी को आन्तरिक दुःख हुआ। टेहरी के महाराज ने यह दुःख सम्वाद सुनते ही सब राज दरबार बन्द कर दिये। लाहौर में यह शोक समाचार १६ वीं अक्टूबर को पहुंचा था*। लाहौर के जौरमैन क्रिश्चियन कालेज में स्वामी जी की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकाश करने के लिये बड़ी भारी सभा हुई थी लगभग छः सात हजार आदमी उपस्थित थे। कालेज का हाल खचाखच भरा हुआ था कहीं तिल रखने को भी स्थान नहीं था। कालेज के तत्कालीन प्रिन्सिपल तथा लाहौर

---

* इस सभा में मैं उपस्थित था क्योंकि उन दिनों मैं लाहौर में रहता था लाहौर से जो "स्वदेशबन्धु" नामक हिन्दी का अख़बार निकलता था, उसके सम्पादन का भार मेरे ऊपर था मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि जैसे हाल में मिस्टर गोखले की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकाश करने के लिये प्रयाग की आर्यकुमार सभा के अधिवेशन का कोई विज्ञापन न होने पर भी बहुत बड़ी भीड़ थी वैसे ही स्वामी रामतीर्थ की मत्यु पर लाहौर में जो शोक सभा हुई थी उसका अच्छी तरह से शहर में विज्ञापन वितरण न होने पर भी हजारों आदमीयों की उपस्थिति थी।

के अनेक लब्धप्रतिष्ठित सज्जनों ने शोक प्रकट किया था। लाला लाजपतराय किसी कार्यवश नहीं आ सके थे। उन्होंने सहानुभूति का एक पत्र भेजा जिसमें अपने न आने पर शोक प्रकट करते हुये लिखा था कि "स्वामी रामतीर्थ का अमेरिका में बड़ा प्रभाव है जिस समय मैं इङ्गलैण्ड से अमेरिका जाने लगा मैंने अपने प्रिय एडवोकेट के सम्पादक बाबू गङ्गा प्रसाद वर्मा को लिखा था कि स्वामी रामतीर्थ से अमेरिकनों के नाम कुछ परिचय पत्र पहुंचा दो बस मेरे इतने लिखने पर स्वामी जी ने बहुत से अपने अमेरिकन मित्रों के नाम परिचय पत्र भेज दिये। लेखनी की ताक़त नहीं है कि इस सभा का कुछ दृश्य लिख सके जिस समय शोक प्रकाश करने के लिये कोई वक्ता खड़ा होता था उस समय उसकी आंखों में आंसुओं की झड़ी बंध जाती थी। श्रोताओं का भी बहुत बुरा हाल था वे हिचकी बांध कर फूट फूट कर ऐसे रोते थे कि कोई अपने स्वजन की मृत्यु पर भी न रोवेगा। अतएव हम इस शोक प्रकाश करनेवाली सभा के सम्बन्ध में विशेष न कह कर सहृदय पाठकों से यही निवेदन करना चाहते हैं कि वे स्वयं ही इस सभा का तथा अन्य स्थानों में स्वामी राम की वियोग वेदना पर जो दुःख प्रकट किया गया था, उसका अनुमान कर लें।
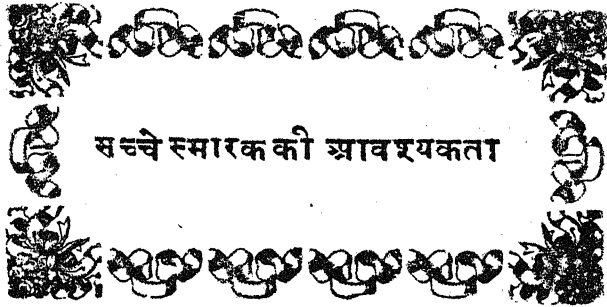
सच्चे स्मारक की आवश्यकता

रण क्षेत्र में युद्ध करते करते जो मृत्यु को अपनी प्राण पत्नी के समान आलिङ्गन करते हैं केवल वे ही वीर नहीं है रणवीर के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के बीर होते हैं। उद्योगवीर, सत्यवीर, कर्मवीर, क्षमावीर, दानवीर, वाक्यवीर, धर्म वीर आदि अनेक वीर होते हैं। स्वामी रामतीर्थ भी एक वीर थे यह सच है कि वह एक योधा नहीं थे, उन्होंने लड़ाई के मैदान में तलवार नहीं चलाई थी, पर वे उद्योगवीर कर्मवीर धर्मवीर और त्यागवीर अवश्य थे। उनकी मृत्यु हुये आज १५ या १६ वर्ष होगये हैं पर इस देश के निवासियों की अकर्मण्यता के कारण उनका कोई स्मारक स्थापित नहीं हुआ है। स्मरण रहे जो जाति अपने यहां के महापुरुषों का आदर सत्कार नहीं करती है वह जाति भविष्य में आने वाली अपनी सन्तान के लिये कोई उच्च आदर्श भी उपस्थित नहीं कर सकती है। अपने यहां के योग्य व्यक्तियों का आदर सत्कार न करना

अपनी आने वाली सन्तान के चरित्रगठन में बाधा पहुंचाना है। अपने यहां के योग्य पुरुषों का सन्मान न करना अपनी भावी पीढ़ी का निर्माण न करना है। हिन्दू जाति सदैव से वीर पूजा के लिये विख्यात रही है। पांच हजार वर्ष से हिन्दू जाति पर विपत्ति के काले काले बादल मंडरा रहे हैं पर फिर भी आज यह जाति जीवित क्यों है। केवल वीरपूजा के कारण ही। संसार की अनेक प्राचीन जातियों के नाम निशान भी नहीं रहे हैं पर हिन्दू जाति अभी तक जीवित है इसका कारण क्या है हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता के इतिहास के नष्ट होजाने पर भी आज हिन्दू जाति क्यों जीवित है! यह एक ऐसा विकट प्रश्न है, जो प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के मस्तिष्क में वाटरलू के युद्ध के समान द्वन्द मचाता है पर देखा जाय तो इस प्रश्न का उत्तर सरल है कि हिन्दू जाति के जीवित रहने का कारण भगवान रामचन्द्र भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जैसे वीरों पर अतुलनीय श्रद्धा होना ही है। पर अब देखते हैं कि इधर कुछ शताब्दियों से हिन्दू जाति में से वीरपूजा का भी भाव उठता चला जा रहा है। यदि वीरपूजा का भाव होता तो क्या महारणा प्रताप सिंह प्रातः स्मरणीय गुरुगोविन्द सिंह और महावीर शिवाजी की जयन्ती के दिन हिन्दू जाति के घर घर में उत्सव न मनाये जाते। ज्यों ज्यों हिन्दू जाति के हृदय से वीरपूजा का भाव उठता हुआ चला जा रहा है त्यों त्यों यह जाति गिरती हुई चली जा रही है। अमेरिका देश में अब भी एब्राहीम लिङ्कन आदि महापुरुषों की जयन्ती धूमधाम से मनाई जाती है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जाति को अपने यहां के वीरों की महात्माओं की पूजा करनी

चाहिये। जिससे आने वाली सन्तान को शिक्षा, आदर्श शिक्षा जीवन के सुधार निमित्त मिलती रहे, भविष्य में आने वाली पीढ़ी को पता लगता रहे कि उसके जीवन का उद्देश्य क्या है।

अच्छा, वीरों की पूजा क्या है! क्या उनके चित्रों को अपने घरों में रख के उनके ऊपर प्रसाद आदि चढ़ाया करें! नहीं नहीं कदापि नहीं वीरपूजा से तात्पर्य यह है कि उनके जीवन से समयानुकूल जो शिक्षायें मिलती हों उनको ग्रहण करें समयानुकूल उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण करके अपना जीवन सुधारें। पर शोक! आज हिन्दू जाति में कृतघ्नता की मात्रा विशेष बढ़ती जा रही है यदि कृतघ्नता की मात्रा बढ़ी न होती तो क्या राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि के स्मारक न होते! क्या स्वामी रामतीर्थ का कोई स्मारक न होता! सच पूछिये तो स्वामी रामतीर्थ के प्रेमियों और भक्तों का कर्तव्य है कि वे उसका एक सच्चा स्मारक बनावें स्वामी रामतीर्थ का सच्चा स्मारक इससे बढ़कर और कुछ नहीं हो सकता है कि एक फण्ड खोला जाय और उसमें खूब अच्छी रकम जमा की जाय और उस रक़म के व्याज से प्रतिवर्ष बहुत से विद्यार्थी स्वनिज विद्या शिल्पकला आदि के पढ़ने के लिये विदेशों को भेजे जांय। इससे एक पन्थ और दो काज वाली कहावत सिद्ध होगी, स्वामी जी का स्मारक स्थापित हो जायगा और यह देश शिल्पकारी आदि में पिछड़ा हुआ है, सो उसकी भी उन्नति होगी। क्या राम के प्रेमी गण और भक्त गण इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे! राम ने अमेरिका में भारतवर्ष की वर्त्तमान अवस्था पर

व्याख्यान देते हुये अमेरिकनों से कहा कि तुम लोग भारत-वर्ष से प्रति वर्ष कुछ ग्रेजुएटों को बुलाकर शिक्षा दो यदि अमेरिकनों ने राम के इस कथन की ओर ध्यान न दिया होता तो न सही, पर इस देश के निवासियों को स्वामी रामतीर्थ के इस कथन की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। यही स्वामी रामतीर्थ का सच्चा स्मारक है। यही स्वामी रामतीर्थ की पूजा है। यही स्वामी राम की आराधना है। स्वामी राम के इस स्मारक में ही भारतवर्ष का कल्याण है। इसी स्मारक के सहारे भारतवर्ष का अभ्युदय होगा! प्यारे भारतवासियो! एक बार चेतो और राम का सच्चा स्मारक स्थापित करके उस ऋण से मुक्त हो जो वे इस देश की सेवा करके हमारे ऊपर छोड़ गये हैं।

दूसरा स्वामी रामतीर्थ का सच्चा स्मारक यह है कि हम लोगों को आपस में रागद्वेष छोड़कर एकता देवी की उपासना करनी चाहिये। सब देवताओं से ऊपर प्रेम देवता है। उसको अपने हृदय मन्दिर में स्थान देना चाहिये। इस समय भारतवर्ष की उन्नति में परस्पर धर्म सम्बन्धी द्वेषाग्नि भी बाधक है। इस समय हमारे देश में धर्मप्रचारकों की एक दूसरे के धर्म सम्बन्धी मत के खण्डन करने की प्रबल लालसा होगई। भारतवर्ष में इस समय सैकड़ों मतमतान्तर प्रचलित हैं। इसका परिणाम क्या होता है परिणाम यह होता है कि देश हित सम्बन्धी आग सुलग जाती है। इस विषय में स्वामीजी ने "Present needs of India" अर्थात् "भारत वर्ष की वर्तमान आवश्यकताएं" शीर्षक जो पत्र अमेरिका से लिखकर भेजा था, उसमें लिखा था:—"धर्मसम्बन्धी मत-

मतान्तरों ने लोगों के मनुष्यत्व को भी छिपा दिया है और उनके राष्ट्रीयत्व को लुप्त कर दिया है"।

इसके आगे उक्त पत्र में स्वामी जी ने लिखा थाः—"अमेरिका में भी कदाचित बहुत नहीं तो हिन्दुस्तान के बराबार मत और पन्थ प्रचलित हैं। परन्तु उन थोड़े से ख़ब्ती मनुष्यों को छोड़कर जिनकी जीविका उनके मतों पर निर्भर है, बाकी लोगों में यह कभी नहीं देखा जाता कि वह अपने देशबन्धुता के भाव को अपने धार्मिक मत की कल्पना के आधीन कर दें और यह विचार करें कि अमुक मनुष्य केथोलिक है और अमुक मनुष्य मेथोडिस्ट है अथवा प्रसबिटेरियन है। न्याय और सत्य के अनुरोध से कहना पड़ेगा कि भारतवर्ष के समान अमेरिका में यह बात नहीं है कि नाम मात्र का धर्माभिमान अमेरिका वासियों में से स्वाभाविक मनुष्यता को भी खो दे। भारतवर्ष में मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ रहते कई युग बीत गये, पर उनकी सहानुभूति अपने पास रहने वाले हिन्दुओं की अपेक्षा दक्षिण यूरोप के तुर्कों के साथ अधिक है। एक बालक जिसका शरीर हिन्दू मां बाप के हाड़-चाम, मांस और रक्त से बना है ज्यों हीं ईसाई हो जाता है, तब रास्तों के कुत्तों से अनजान बन जाता है। मथुरा का एक द्वैतवादी वैष्णव दक्षिण के एक द्वैतवादी वैष्णव के लिये क्या नहीं करता परन्तु वही वैष्णव अपने ही शहर के एक अद्वैतवादी वेदान्ती के मान भङ्ग के लिये क्या नहीं करता इन सब बातों के लिये किसको दोष दिया जाय ? सब मतमतान्तरों का समान पक्षपात और बनावटी खुखला ज्ञान Shallow knowledge ही है।" देखिये पाठक! भारतवर्ष की राष्ट्रीयता

धर्म सम्बन्धी मतभेद के कारण जो कुठार चल रही है। उसके विषय में स्वामी जी के ऊपर उद्धृत किये हुए वाक्य विचारणीय हैं। कोई साल ऐसा नहीं जाता कि धर्म सम्बन्धी मतभेद के कारण हिन्दू और मुसलमानों में ईद और मोहरम पर कहीं न कहीं दङ्गा न हो जाता हो। शैव-शाक्त और वैष्णवों का झगड़ा नया नहीं है। कहीं कहीं तो वैष्णवों में एक दूसरे सम्प्रदाय के लोगों में भयङ्कर कागज़ी युद्ध हो जाता है और कभी कभी लाठी भी चल जाती है। आर्यसमाजी और सनातनधर्मियों के तो शास्त्रार्थ नित्य होते रहते हैं वैष्णव और जैनियों में भी खूब अनबन रहती है इस सभ्यता के समय में भी पुराने ढर्रे के लोग कहते हैं कि चाहे हाथी प्राण लेने को दौड़ रहा हो तो भी जैनियों के मन्दिर में नहीं जाना चाहिये। इस भांति हमारे देशवासियों की शक्ति मतमतान्तर सम्बन्धी द्वेषाग्नि को सुलगाने में ही नष्ट हो रही है। सच पूछिये तो सब धर्मों के ऊपर देश सेवा का जो धर्म है उससे लोग विमुख हो रहे हैं। देश की शोचनीय अवस्था हो रही है पर हम को धर्म सम्बन्धी निरर्थक विवादों से ही अवकाश नहीं मिलता है। हमारी शक्तियों का अनर्थक व्यय हो रहा है। स्वामी जी ने अमेरिका से लौट कर लखनऊ में एक व्याख्यान दिया था उसमें कहा थाः—"मैंने अमेरिका में देखा कि एक स्त्री रोमन कैथोलिक थी, उसका पति प्रोटेस्टेन्ट था, प्रोटेस्टेन्ट होने पर भी उसका पति उसके गिरजे में पहुंचाने गया। इस पर मैंने उसके पति से पूछा कि वह स्त्री रोमन कैथोलिक है आपके धर्म को माननेवाली नहीं है। फिर आप उसको गिरजे तक पहुंचाने क्यों गये? मेरी यह बात सुनकर उसके

पति ने यह उत्तर दिया कि "बेचारी वह स्त्री मेरे लिये सब कुछ कष्ट सहन करने को तैयार रहती है तब क्या ऐसी दशा में मेरा यह कर्तव्य नहीं है कि मैं उसको गिरजे तक भी पहुंचाने न जाऊं? । वाह क्या ही सुन्दर वाक्य है? जहां पर ऐसे उच्च भाव हों, वहां धर्मसम्बन्धी मत भेद होने पर भी देशहित सम्बन्धी कार्यों में बाधा उपस्थित नहीं हो सकती है। इस लखनऊ वाले व्याख्यान में ही स्वामी जी ने जापान के बारे में कहा था कि जापानियों में देश सेवा का भाव इतना अधिक होता है, कि जब जापानी बालक पाठशाला में जाता है तो गुरु उससे पूछता है कि यह तेरा शरीर कहां से आया? कहता है कि माता पिता से, गुरु फिर पूछता है कि माता पिता यह शरीर कहां से लाये? लड़का उत्तर देता है कि जापान की मिट्टी से तब गुरु विद्यार्थी को यह शिक्षा देता है कि "जापान को अधिकार है जब चाहे तुम्हारे शरीर को जापान के काम में लावे" अपने इस व्याख्यान में स्वामी जी ने जापान की बड़ी प्रशंसा की थी। अन्त में यही कहा था कि वहां पर धर्मसम्बन्धी मत भेद की अपेक्षा देश सेवा का महत्व अधिक समझते हैं। वास्तव में स्वामी जी का दूसरा सच्चा स्मारक यही है कि हम देश सेवा का व्रत ग्रहण करें स्वामी जी ने अपने राष्ट्रीय धर्म शीर्षक लेख में अनेक प्रबल युक्तियों और तर्क से बतलाया है कि व्यक्तिगत धर्म और स्थानीय धर्म के अपेक्षा देश वा जाति की ओर जो कुछ हमारा धर्म है उसको अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिये। इस प्रसङ्ग पर स्वामी जी ने गुरु गोविन्द सिंह का उदाहरण दिया है, जिन्होंने गृहधर्म और व्यक्तिगत धर्म की अपेक्षा राष्ट्रीय धर्म को अधिक महत्व दिया था,

राष्ट्रीय धर्म के निमित्त गृहधर्म और व्यक्तिगत धर्म का परित्याग कर दिया था। स्वामी जी का कहना था कि शक्ति तब ही प्राप्त होगी, जिस समय छोटी सी आत्मा देश की महान शक्ति में लय हो जायगी"। वास्तव में इस समय हमारे देशवासियों में व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत भरा हुआ है। इस व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण देश के अभ्युदय में बाधा पहुंच रही है। यदि हम को अपने देश से कुछ ममता है, कुछ प्रेम है तो अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को परित्याग करके, अपनी शक्ति देश की महान् शक्ति में लगानी चाहिये। यह मत देखो कि अमुक व्यक्ति-अमुकधर्म को माननेवाला है, अमुक-व्यक्ति अमुक जाति का है। देश सेवा में ऊंच नीच जाति का विचार मत करो। अपने सब भाई हैं! चाहे वह फटे पुराने चीथड़े पहने हों। चाहे वह मुसलमान हो चाहे हिन्दू, अब तक व्यर्थ झगड़ों में अपनी बहुत शक्ति खो चुके फूट का फल खाते २ कितनी ही शताब्दियों तक गुलामी की वेड़ी पहन चुके। आओ! अब एक दूसरे के गले से गले मिलें, उच्च स्वर से पुकारें कि हम सब भाई हैं हमारा उद्देश्य अपनी भारतमाता की सेवा करना है। भाई भाई ने भाई भाई पर पहले जो अत्याचार किया है उसको भूल जावें। आओ! अन्त्यज जातियों को गले लगावें और उनसे कहें कि भाइयो! हमने शताब्दियों से जो तुम्हारे ऊपर अत्याचार कर रक्खा है, तुमने जो मनुष्यत्व खो दिया है, उसको भूल जाओ। जैसे हम भारतमाता की सन्तान हैं वैसे ही तुम भी हो। आज उसके बच्चों को रोटियों के लाले पड़े हुए हैं आज भारतमाता के बच्चे अनाज के दाने दाने के लिये मुहताज हैं। आज उनको अपना अधि-

कार अपना स्वत्व कुछ भी प्राप्त नहीं है। इन सब दुखों को दूर करने का एक मात्र यही उपाय है कि भारतमाता की सेवा करें। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" इस महा-मन्त्र का निरंतर जाप करते रहें। भारतमाता ही हमारी आराधनीय देवी है भारतमाता की सेवा में ही हमारी मुक्ति है। भारतमाता की सेवा ही हमारा परम धर्म है। इसकी एक-मात्र उपासना, आराधना ही स्वामी जी का सच्चा स्मारक है भारत के बच्चो! स्वामी राम के प्रेमियो! अपने इस परम पुनीत कर्तव्य को पहिचानो और अपने भाइयो में, भारतमाता की लालों में ज्ञान की ज्योति का प्रकाश करो। इससे बढ़-कर स्वामीराम का और कोई स्मारक नहीं हो सकता है।

॥ इति ॥